श्री तीर्थंकर—चरित्र

प्रथम भाग।

लेखक—

श्री बालचन्द श्रीश्रीमाल
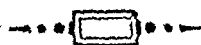
प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी

महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु

श्रावक-मण्डल रतलाम
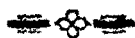
द्वितियावृत्ति १००० | सम्वत् २००७ | मूल्य ॥)

इसके सिवा त्रिषष्ठिश्लाघा पुरुष जीवन चरित्र गुजराती में है इस ग्रन्थ से यत्किंचित लाभ उठाने के लिए गुजराती का जानना आवश्यक है, जो सब विद्यार्थियों के लिए सम्भव नहीं है। फिर परीक्षा बोर्ड की परीक्षा देने वाले विद्यार्थीगण तीर्थङ्कर चरित्र से कैसे परिचित हों? इस प्रश्न ने एक ऐसी पुस्तक की आवश्कता बताई, कि जिसके द्वारा विद्यार्थीगण थोडे में सरलतापूर्वक भगवान तीर्थङ्कर के चरित्र से परिचित हो सकें इस आवश्कता की पूर्त्ति के लिए ही मैंने यह पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक को लिखने में मैं अपनेआप को सफल हुआ नहीं मानता। मान भी कैसे सकता हूं। जब मैं, तीर्थंकर भगवान का जीवन चरित्र लिखने का अधिकारी ही नहीं हूं तव असफलता स्वभाविक है फिर भी यह पुस्तक उन कतिपय विद्यार्थियों के लिए अवश्य लाभ देने वाली होगी, जो थोडे में भगवान तीर्थंकर के चरित्र से परिचित होने की इच्छा रखते हैं, और जिनका हित दृष्टि में रखकर यह पुस्तक दो भाग में लिखी और प्रकाशित की गई हैं।

इस पुस्तक का मूल आधार शास्त्र और त्रिशष्ठिश्लाघा पुरु॰ जीवनचरित्र ग्रन्थ है। यद्यपि इन दोनों आधार पर भगवान तीर्थंकर का अलंकार—ऐवं विशेष व्याख्यापूर्ण जीवनचरित्र बहुत बड़ा लिखा जा सकता है, परन्तु यह निर्दिष्ट न था। ऐसा करने से तो विद्यार्थियों के सामने बड़ी कठिनाई आ खड़ी होती, जो त्रिषष्ठिश्लाघा पुरुष चरित्र के विषय में ऊपर

बताई गई है। इसलिए विद्यार्थियों की सुगमता को दृष्टि में रख कर, पुस्तक में भगवान तीर्थंकर के जीवन चरित्र अलंकार एवं विशेष व्याख्या रहित ही दिये गये हैं। बल्कि अनेक जगह आने वाला एक ही प्रकार का वर्णन भी एक से अधिक जगह नहीं दिया गया है और इस प्रकार पुस्तक के कलेवर को बढ़ने से रोका गया है इन सब कारणों से पुस्तक में त्रुटि होना आश्चर्य की बात नहीं है। आशा है कि त्रुटियों के लिए सज्जनगण हमे क्षमा करेंगे और त्रुटियोंसे सूचित करने की कृपा करेंगे, जिसमें हम पुस्तक की इन त्रुटियों से विद्यार्थियों को भी सूचित कर सकें और भावी संस्करण में उन्हें मिटाने का प्रयत्न भी कर सकें।

पुस्तक के विषय में, हम विद्यार्थियों को यह सूचित कर देना आवश्यक समझते हैं कि हमने पुस्तक का कलेवर न बढे इस दृष्टि से बहुत सा ऐसा वर्णन—जो प्रत्येक तीर्थंकर के चरित्र में आना चाहिए था—संकोच लिया है और वह वर्णन किन्हीं भी एक तीर्थंकर के चरित्र में कर दिया हैं। जैसे पाँच कल्याण वर्णन, नगर और क्षेत्र का वर्णन, राज्य सम्पदा का वर्णन दान वर्णन आदि। अतः किसी एक चरित्र में वर्णित ऐसी बातों के लिए यह न समझ लिया जावे कि यह घटना केवल इसी चरित्र के लिए हैं।

श्री अ. भा. श्वे. स्था. जै. का. के अजमेर अधिवेशन के ठहरावनुसार, पुस्तक को प्रकाशित करने के पूर्व कान्फ्रेन्स

द्वारा सर्टिफाई (प्रमाणित) कराना चाहिए था और इस ठहराव का पालन करने के लिए, हमने पुस्तक तयार होते ही पत्र नं० ५६०—३०।५।३३ के द्वारा कान्फ्रेन्स आफिस को लिखा था कि पुस्तक कहाँ भेजें ? इसके उत्तर में आफिस ने हमें पत्र ता० ११।६।३३ द्वारा लिखा था कि हम इस विषय में फिर लिखेंगे। परन्तु कान्फ्रेन्स आफिस ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा। हमने पत्र नं० ६५२—२३-६-३३ द्वारा कान्फ्रेन्स आफिस को फिर लिखा कि यह पाठ्यपुस्तक है, जिसका छपना आवश्यक है, अतः आप इसके विषय में शीघ्र प्रबन्ध करें, अन्यथा विवश होकर पुस्तक छपवानी पड़ेगी। कान्फ्रेन्स आफिस से इस पत्र का हमें कोई उत्तर नहीं मिला फिर भी हमने पुस्तक का कुछ भाग जयपूर भेज कर वहाँ विराजित शतावधानी पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज की दृष्टि में निकलवा लिया। यह पुस्तक विशेषतः बच्चों के लिए ही लिखी गई है, और यथासम्भव हमने सावधानी से भी काम लिया है, फिर भी हम पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने के लिए सदैव उद्यत हैं। इतिशुभम्।

रतलाम
महा सुदि १ २००७

निवेदक—
श्री बालचन्द्र श्री श्रीमाल

चारित्र—सूची।

नाम | पृष्ठांक

भगवान श्री आदिनाथ।

पूर्व-भव

श्लोक—

आनन्द मन्दिर मुपासितमृद्धि विश्व
नाभेय देव महितं सकला भवन्तम्।
लब्धा अर्यान्नियतयो भव यान्समादौ
नाभेय देव महितं सकला भवन्तम्॥

यह जम्बू द्वीप तिर्छे लोक के असंख्य द्वीपों के मध्य में है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई, एक लाख योजन है। इसके अन्तर्गत, भरत, ऐरावत आदि मनुष्यों के निवास के दस क्षेत्र हैं।

भरत क्षेत्र में, क्षिति प्रतिष्ठित नामक एक नगर था। इस नगर के राजा का नाम, प्रसन्नचन्द्र था। इसी नगर में, धन्ना सार्थवाह नाम का एक प्रतिष्ठित, समृद्ध, एवं यशस्वी साहुकार रहता था। एक समय, धन्ना सेठ व्यापार निमित्त अन्य देश में जाने को तैयार हुआ। उसने, नगर में यह घोषित किया कि, मैं, व्यापारार्थ वसन्तपुर जा रहा हूँ, अतः मेरे साथ जो भी चलना चाहे, चले; मैं, उनकी सब प्रकार से सहायता करूंगा। धन्ना सेठ की इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप, नगर के बहुत से लोग, धन्ना सेठ के साथ वसन्तपुर जाने के लिए तैयार हो गये। पूर्व समय का प्रवास, आज की तरह सरल न था। इसलिए आत्म-रक्षा की दृष्टि से, प्रत्येक प्रवास करनेवाले को, किसी न किसी के साथ की आवश्यकता रहा करती थी। धर्मघोष आचार्य को भी वसन्तपुर की ओर ही पधारना था, इसलिए वे भी अपने सन्तों सहित धन्ना सेठ के ही साथ हो लिये।

नगर के दूसरे लोगों एवं धर्मघोष आचार्य सहित, धन्ना सेठ, वसन्तपुर की ओर रवाना हुआ। चलते-चलते मार्ग में ही वर्षा ऋतु आ गई, इस कारण सार्थवाह धन्ना सेठ को पड़ाव डाल

कर रहना पड़ा। धन्ना सेठ अपने साथियों सहित पड़ाव डालकर रह गया है, यह देखकर धर्मघोष आचार्य भी, पर्वत की कन्दरा ओं में चातुर्मास बिताने के लिए चले गये। संयोगवश, धन्ना सेठ को इन मुनियों का स्मरण न रहा, इस कारण वह मुनियों की साल-सम्हाल भी न कर सका। जब चातुर्मास समाप्त हुआ, और फिर आगे चलने की तैयारी होने लगी तब धन्ना सेठ को मुनियों का स्मरण हुआ। वह कहने लगा, कि मेरे साथ जो मुनि आये थे, वे कहाँ हैं? अपनी घोषणा के अनुसार, मैंने न तो उनकी खबरगीरी ही की, न किसी प्रकार की सेवा-शुश्रूषा ही। इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ, धन्ना सेठ, गिरी-कन्दरा में विराजित आचार्य की सेवा में उपस्थित हुआ और दीनता एवं अनुनय-विनयपूर्वक उनसे प्रार्थना करने लगा कि मुझ हतभाग्य से आप विस्मृत किये गये। इस कारण आपकी सेवा का लाभ न ले सका। आप मेरा अपराध क्षमा करें, और कृपा करके पार-णा करें।

धर्मघोष आचार्य, सेठ के पड़ाव पर भिक्षा करने के लिए पधारे। दान देने के लिए धन्ना सेठ के परिणाम इतने उच्च हुए, कि देवताओं को भी आश्चर्य हुआ। सेठ के परिणामों की परीक्षा करने के लिए, देवताओं ने, मुनि की दृष्टि बाँध दी। मुनि तो अपने पात्र को देख नहीं सकते थे, इस कारण सेठ का बहराया हुआ घी, पात्र भर जाने से बाहर बहने लगा। फिर भी, सेठ

घी डालता ही रहा। परिणामों की उच्चता के कारण, वह यही समझता रहा, कि मेरा बहराया हुआ घृत तो पात्र में ही जा रहा है। सेठ के दृढ़ परिणामों को देखकर, देवताओं ने, अपनी लीला समेट ली और दान का माहात्म्य बताने के लिए ,वसुधरादि पाँच द्रव्य प्रकट किये।

इस उत्तम दान के प्रभाव से, धन्ना सेठ ने तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य-सम्पादन किया। पश्चात्, सुख-पूर्वक अपनी शेष आयु समाप्त करके इस भव को त्याग कर, उत्तर कुरु क्षेत्र में युगुलिक * हुआ।

उत्तर कुरु क्षेत्र भोग भूमि है। वहाँ के मनुष्यों (युगल्यों) की अवगाहना, तीनगाऊ (कोस) की होती है और तीन पल्योपम की आयु होती है। दस प्रकार के कल्पवृक्ष, उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। उन्हें, तीन दिन में अहार की इच्छा होती है। वे मनुष्य, सरल परिणामी, अल्प कषायी तथा अल्प विषयी होते हैं और सदा प्रसन्नचित्त एवं महा सुखी रहते हैं। वे लोग आयु भर में, केवल एक बार युगल सन्तान (एक ही साथ एक पुत्र और एक पुत्री) उत्पन्न करते हैं और वह भी आयु के छः मास शेष रहने पर। उन्हें अपनी सन्तान का पालन-पोषण, केवल

---

* युगुलिया, उन मनुष्यों का नाम है, जो भोग-भूमि में, एक पुत्र और एक कन्या, साथ ही उत्पन्न होते हैं।

४६ दिन तक करना होता है। पश्चात् वे युगुल (पुत्र-पुत्री) युवक युवती पति पत्नी के रूप में स्वतंत्रता से रहने लगते हैं।

प्रकृति की विशुद्धता के कारण, वे युगुलये अपनी आयु समाप्त करके, देव-गति में ही आते हैं। धन्ना सेठ का जीव भी युगुल्या का भव त्याग कर, देवलोक में देवता हुआ।

इसी जम्बू द्विप के पश्चिय महाविदेह क्षेत्र में गान्धार नामक देश था। वहाँ के राजा का नाम शतबल था। शतबल के चन्द्रकान्ता नाम की रानी थी। देव-भव धारी धन्ना सेठ का जीव देवताओं के दिव्य भोगों को भोगकर, आयुष्य पूर्ण होने पर राजा शतबल की रानी चन्द्रकान्ता की कुक्षि से उत्पन्न हुआ यहाँ उसका नाम महाबल रखा गया। महाबल, सब विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत हुआ। महाबल युवक होने पर, राजा शतबल ने, उसके साथ अनेक राजकन्या विवाह दीं। पश्चात् समय देखकर शतबल ने राज-भार महाबल को सौंप दिया और स्वयं संयम में प्रवर्तित हो गया। बहुत काल तक संयम की आराधना और अनेक प्रकार के तप करके, शतबल स्वर्गवासी हुआ

राजा महाबल, नीती-पूर्वक राज्य करने लगे। महाबल के, प्रधानतः चार मन्त्री थे। जिनके नाम स्वयंबुद्ध, सभिन्नमति, शतमति और महामति थे। इन चारों मन्त्री में से, स्वयंबुद्ध तो सम्यक्त्वधारी एवं धर्मपरायण था और शेष तीन मंत्री,

मिथ्यात्वी थे। तीनों मिथ्यात्वी मंत्री तो, राजा महाबल को संसार में ही फँसाये रखने की चेष्टा करते रहते थे, लेकिन स्वयंबुद्ध मंत्री, समय-समय पर राजा को धर्मोपदेश द्वारा, संसार से निकलने के लिए सङ्केत करता रहता था। महाराज महाबल भावी तीर्थंकर था, इसलिए उसे स्वयंबुद्ध मंत्री की बात पसंद आना स्वभाविक था। एक दिन राजा महाबल अपनी आयु समाप्ति के सन्निकट आन पंहुची है यह जानकर स्वयंबुद्ध मंत्री की बात से कहने लगा, कि मेरा हितचिन्तक तू ही है। तेरा हृदय मेरी भलाई के लिए सदा चिन्तित रहा करता है। मैं तो संसारिक विषयों में ही फँसा रहता, लेकिन तुने मुझे मोह निन्द्रा से जागृत किया है अब तू यह बता, कि मैं थोडे ही समय में किस प्रकार आत्म कल्याण करूं? क्योंकि मेरी आयु बहुत कम शेष है।

महाबल के कथन के उत्तर में, स्वयंबुद्ध मंत्री कहने लगा, महाराज! आप घबराइये नहीं, न खेद ही कीजिये। सच्चे हृदय से थोडे समय तक आराधा हुआ धर्म भी कल्याण के लिए पर्याप्त हो सकता है आप राज-पाट त्याग कर, दीक्षा धारण करलें, तो इस थोडे समय में भी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं।

महाराजा महाबल ने, स्वयंबुद्ध मंत्री की बात स्वीकार करके राज-पाट त्याग दीक्षा ले ली। महाबल ने, दीक्षा लेने के दिन से ही अनशन कर दिया और बाईस दिन तक अनशन करते

क पश्चात्, शरीर त्याग, द्वितीय कल्प (ईशान्य देवलोक) में ललितांग देव हुआ। ललितांग देव की, स्वयंप्रभा नाम्नी प्रधान देवी थी।

उधर महाबल की मृत्यु का हाल जानकर, स्वयंबुद्ध मंत्री को भी संसार से वैराग्य होगया। उसने, भी गृह-संसार त्याग, दीक्षा ले ली और संयम की निरतिचार आराधना करके, समय पर शरीर त्याग, द्वितीय कल्प में सामानिक देव हुआ। देव होने के पश्चात् भी स्वयंबुद्ध, अपने पूर्व स्वामी महाबल-इस समय के ललितांग देव का हितचिन्तक ही रहा, और स्वयंप्रभा देवी के विरह से पीड़ित ललितांग देव को, समझा-बुझाकर धर्मपर दृढ़ किया।

इसी जम्बू द्वीप की पुष्पकलावती विजय में स्थित, लोहार्गल नगर के राजा का नाम स्वर्णजंघ था। उसके, लक्ष्मी-देवी नाम की रानी थी। ईशान्य देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, ललितांग देव ने इस लक्ष्मीदेवी रानी की कुक्षि से जन्म लिया। यहां उसका नाम वज्रजंघ रखा गया। उधर अपने पति ललितांग देव के विरह से, स्वयंप्रभा देवी पीड़ पाने लगी। अन्त में स्वयंप्रभा देवी भी, देवलोक का आयुष्य समाप्त होने पर, इसी पुष्पकलावती विजय स्थित पुंडरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन की पुत्री हुई। यहां स्वयंप्रभादेवी का नाम श्रीमती हुआ

श्रीमती युवती हुई। एक दिन वह अपने महल की छत पर

बैठी थी, इतने में ही उस ओर से देवों के विमान निकले। उन देवविमानों को देखकर श्रीमती को जातिस्मृति ज्ञान (यह, मतिज्ञान का पर्यायवाची भेद है) हुआ। अपने पूर्व भव का वृत्तान्त जानकर, ललितांग देव का स्मरण आने से, श्रीमती ने मौन धारण कर लिया। उसकी सखियों ने उसका मौन तुड़वाने की बहुत चेष्टा की, लेकिन सब चेष्टाएं निष्फल हुईं। अन्ततः श्रीमती की एक परिडता नाम्नी चतुर सखी ने, एकान्त में श्रीमती से उसके मौन का कारण पूछा। श्रीमती ने, परिडता से कहा कि जबतक मुझे अपने पूर्व भव का पति न मिलेगा, मैं किसीसे न बोलूँगी।

श्रीमती की साहयता से, परिडता ने एक पट पर, दूसरे देव-लोक एवं ललितांग देव के विमान आदि का चित्र बनाया और चित्र में कुछ त्रुटि रहने देकर, चित्रपट को राज-पथ पर टांग दिया। उस चित्रपट के देखने से, कुमार वज्रजंघ को भी जाति स्मृति ज्ञान हुआ। उसने, चित्रपट में रही हुई कमी मिटा दी। परिणाम-स्वरूप वज्रजंघ और श्रीमती का आपस में विवाह हो गया।

वज्रजंघ और श्रीमती, बहुत काल तक सांसारिक भोग भोगते रहे। पश्चात, शरीर त्याग कर, सरल परिणामों के कारण, उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया हुए। वहाँ युगलिक सुख भोग कर, दोनों अपना आयुष्य समाप्त करके, सौधर्म देवलोक में गये।

जंबू द्वीप के महाविदेह क्षेत्रमें, क्षितिप्रतिष्ठित नाम का एक नगर था। उस नगर में सुविधि नाम का एक वैद्य रहता था। वज्रजंघ का जीव, सौधर्म देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके, इस सुविधि वैद्य के यहां पुत्ररूप में जन्मा, जिसका नाम जीवानन्द रक्खा गया। जीवानन्द, वैद्यक में बहुत निपुण था। उधर श्रीमती का जीव भी, सौधर्म देवलोक का आयुष्य भोगकर, इसी क्षितिप्रतिष्ठित नगर में, ईश्वरदत्त सेठ के यहां पुत्ररूप में जन्मा।

जीवानन्द वैद्य की, महिधर राजकुमार, एक प्रधान का पुत्र, एक सेठ का पुत्र, और दो अन्य साहूकारों के पुत्रों से बड़ी मैत्री थी। एक दिन जीवानन्द वैद्य के पांचों मित्र, जीवानन्द वैद्य के यहाँ बैठे थे। उसी समय, वहाँ पर एक तपोधन, किन्तु व्याधि-पिड़ित मुनि पधारे। जीवानन्द वैद्य अपने व्यवसाय में लगा हुआ था, इसलिए उसने इन मुनि की ओर देखा भी नहीं। यह देखकर, महिधर राजकुमार ने जीवानन्द वैद्य से कहा मित्र, तुम बड़े स्वार्थी जान पड़ते हो! जहाँ निःस्वार्थ सेवा का अवसर होता है, उस ओर तुम ध्यान भी नहीं देते! योग्यता होते हुए भी परोपकार-रहित जीवन से क्या लाभ! महिधर की बात के उत्तर में, जीवानन्द ने कहा कि आप ठीक कहते हैं, लेकिन यह बताइये कि मेरे योग्य ऐसी कौनसी सेवा है? महिधर ने मुनि की ओर संकेत करते हुये जीवानन्द से कहा कि ये मुनि,

तपस्वी एवं शरीर की ओर से भी उपेक्षा रखनेवाले जान पड़ते हैं। इनका शरीर रोगी है, अतः ऐसे महात्मा के शरीर का रोग मिटाकर महान लाभ लीजिए। मुनि के शरीर को देखकर जीवानन्द वैद्य ने महिधर से कहा, कि इन महात्मा के शरीर में, कुपथ्य सेवन से रोग हुआ है। इस रोग को मिटाने के लिए लक्ष-पाक तेल तो मेरे पास है, लेकिन गौशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल मेरे पास नहीं है। यदि आप ये दोनों वस्तु ले आवें, तो मुनि की चिकित्सा हो सकती है और इनका शरीर स्वस्थ बन सकता है।

जीवानन्द वैद्य का उत्तर सुनकर, पाँचों मित्र, गौशीर्ष चन्दन और रत्न कम्बल लाने के लिए बाजार में गये। बाजार में जिन व्यापारी के यहाँ ये दोनों वस्तुएँ थीं, उसने कहा, कि इन दोनों का मूल्य तो दो लाख स्वर्ण मुद्रा है, लेकिन यह बताइए, कि आप ये दोनों वस्तु, किस कार्य के लिए ले रहे हैं। पाँचों मित्र ने, व्यापारी को उत्तर दिया, कि हमें इन वस्तुओं की, एक महात्मा के शरीर की चिकित्सा के लिए आवश्यकता है। व्यापारी ने, इन मित्रों को धन्यवाद देते हुए, दोनों वस्तुएँ दे दीं, और कहा, कि मैं इनका मूल्य न लूँगा, आप इन्हें लेजाकर मुनि के शरीर की चिकित्सा करिये।

पाँचों मित्र, दोनों वस्तु लेकर, अपने छठे मित्र जीवानन्द के

पास आये। छहों मित्र ने मुनि के रुग्ण शरीर में, लक्षपाक तेल का मर्दन करके, रत्न कम्बल द्वारा रोग कृमि निकाल गोशीर्ष चन्दन के लेप से, शरीर को नीरोग बना दिया।

अनुक्रम से छहों मित्र, संसार से विरक्त हो गये। छहों ने संयम स्वीकार कर लिया और अनेक प्रकार का तप करके, आयुष्य पूर्ण होने पर, बारहवें देवलोक में, महर्द्धिक देव हुए।

इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरीकिनी नाम की एक नगरी थी। वहां, वज्रसेन नाम के महाराजा राज्य करते थे जो तीर्थंकर थे। वज्रसेन महाराजा के धारिणी नाम की रानी थी। जीवानन्द वैद्य का जीव, बारहवें देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, धारिणी रानी के गर्भ में आया। धारिणी रानी ने उसी रात में, चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा वज्रसेन ने, धारिणी रानी से महास्वप्न सुनकर, यह फल बताया, कि तुम चक्रवर्ती पुत्र प्रसव करोगी। समय पाकर रानी ने, सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम वज्रनाभ हुआ। जीवानन्द वैद्य का जीव तो वज्रनाभ हुआ, और जीवानन्द के शेष पाँच मित्र, वज्रनाभ के छोटे भाई हुए।

दीक्षा-काल समीप जानकर, लोकान्तिक देवों ने महाराज वज्रसेन से, तीर्थ प्रवर्ताने के लिए प्रार्थना की। महाराजा वज्रसेन ने अपने पुत्र वज्रनाभ को राज्यारूढ़ किया और स्वयं ने दीक्षा

ले ली। दीक्षा लेकर मुनि वज्रसेन ने, कठिन तप-द्वारा घातक कर्म क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

एक दिन, महाराजा वज्रनाभ के सन्मुख आकर शस्त्रागार-रक्षक ने, आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई दी। इतने ही में, दूसरी ओर से, 'वज्रसेन तीर्थंकर को केवलज्ञान हुआ है' यह बधाई आई। इसी समय वज्रनाभ को, अपने यहाँ पुत्र-जन्म होने की भी बधाई मिली। चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, सर्व-प्रथम तीर्थंकर के केवलज्ञान की महिमा की अर्थात् वन्दन, वाणी श्रवण, और सम्यक्त्व की प्राप्ति की और पश्चात् चक्ररत्न एवं पुत्र उत्पन्न होने के महोत्सव किये।

चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, चौदह रत्न की सम्पत्ति से, छः खण्ड पृथ्वी का विजय किया और राजाओं एवं देवों को वश करके, दीर्घकाल तक चक्रवर्ती पद का उपभोग करते रहे। समय पाकर व्रजनाभ को संसार से वैराग्य हुआ और, वे, वज्रसेन तीर्थंकर के समीप दीक्षा लेकर, अनेक प्रकार के तप करने लगे। अन्ततः तीर्थंकर पद के योग्य बीस बोल की आराधना करके उत्कृष्ट रसद्वारा तीर्थंकर नाम उपार्जन किया और शरीर त्याग कर, सर्वार्थ-सिद्ध महाविमान में, तैंतीस सागर की स्थिति वाले सर्वोत्कृष्ट देव हुए।
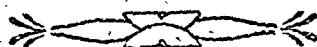
अन्तिम भव ।

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तथा द्वितीय आरे बीत चुके थे। तृतीय आरे का भी बहुत भाग व्यतीत हो चुका था, केवल चौरासी लाख पूर्व से कुछ अधिक काल शेष था। जम्बू द्वीप के इस भरत क्षेत्र में, उस समय भी, युगुल्या धर्म कुछ-कुछ मौजूद था। नाभिकुलकर नाम के युगुल्यों के राजा थे, जिनकी रानी का नाम मरुदेवी था। वज्रनाभ का जीव, सर्वार्थसिद्ध महाविमान का आयुष्य भोगकर, भगवती मरुदेवी के गर्भ में आया। महारानी मरुदेवी ने, स्वप्न में, वृषभ, हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कुंभकलश, पद्मसरोवर क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम-अग्नि को देखा। इन चौदह महास्वप्न को देखकर, महारानी मरुदेवी जाग उठी और बहुत हर्षित हुई। वे शीघ्रही अपने पति महाराज नाभि के समीप गई और उन्हें देखे हुए महास्वप्न सुनाये। महारानी मरुदेवी के महास्वप्नों को सुनकर, महाराजा नाभि, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मरुदेवी से कहा-भद्रे, इन महास्वप्न के प्रभाव से तुम एक महा भाग्यवान पुत्र को जन्म दोगी। पति की इस बात को, महारानी ने सादर शीश चढ़ाया और हर्षित होती हुई, अपने स्थान पर लौट आई। भगवान श्री ऋषभदेव का यह प्रथम कल्याण, आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी को

हुआ। इस कल्याण का, इन्द्र और देवताओं ने भी महोत्सव मनाया।

महारानी मरुदेवी, यत्न पूर्वक गर्भ का पोषण करती रहीं। नौमास साढे सात रात व्यतीत होने पर, बसन्त ऋतु में चैत्र कृष्णा अष्टमी की रात को उत्तराषाढा नक्षत्र में, सर्व उच्चयोग प्राप्त होने पर महारानी मरुदेवी ने, त्रिलोकपूज्य पुत्र को प्रसव किया। उस समय,ऊर्ध्व मध्य और अधः लोक उद्योतमय हुआ और क्षण भर के लिए नारकीय जीव भी आनन्दित हुए।

जिस समय तीर्थंकर भगवान का जन्म होता है, इन्द्रों के आसन, कम्पित होने लगते हैं। वे, अंगस्फूरणादि से जान जाते हैं, कि तीर्थंकर भगवान का जन्म हो चुका अतः भगवान का जन्मकल्याण महोत्सव करने को, उपस्थित होते हैं। भगवान ऋषभदेव के जन्म समय भी ऐसा ही हुआ। इसलिए, सर्व प्रथम छप्पन दिक्-कुमारियां, माता मरुदेवी की सेवा में उप-स्थित हुईं, और उन्होंने जन्म स्थान व उसके आस पास की भूमि शुद्ध करके प्रसूति कर्म योग्य सब प्रबन्ध किया। भगवान का जन्म होजाने पर, एक-एक करके त्रैसठ इन्द्र एवं असंख्य देव-देवी, भगवान का जन्म कल्याण महोत्सव मनाने के लिए, मेरु पर्वत पर एकत्रित हुए। पश्चात् सौधर्मपति शक्रेन्द्र महा-राज, महारानी मरुदेवी के भवन में पधार कर, भगवान तथा माता को प्रणाम किया और अवस्वापिनी निद्रा द्वारा महारानी

मरुदेवी को शान्त करके, भगवान को, जन्मकल्याणार्थ मेरु पर्वत पर ले गये। वहां पर क्रमानुसार सभी इन्द्रों ने भगवान को स्नान करा, वस्त्राभूषण पहनाये और उनकी पूजा-प्रार्थना की। एकत्रित देव-देवी ने भी गान-वाद्य द्वारा, भगवान के जन्म कल्याण का मंगल मनाया। यह हो चुकने पर, दक्षिणार्द्ध लोक के स्वामी शक्रेन्द्र महाराज भगवान पर छत्र-चामर आदि करके, जयध्वनि से गगन-मण्डल को गुँजाते हुए, भगवान को महारानी मरुदेवी के पास लाये भगवान को उनकी माता के पास पधराकर, माता की अवस्वापिनी निद्रा हरण करली और भगवान एवं माता मरुदेवी को नमस्कार करके शक्रेन्द्र महाराज, सब देव-देवी सहित नन्दीश्वर द्वीप में गये। वहां सबने अष्टान्हिका महोत्सव मनाया। इस प्रकार ऋषभ भगवान का जन्म कल्याण मनाकर, सब इन्द्र एवं देव-देवी अपने-अपने स्थान को चले गये।

भगवान ऋषभदेव, अंगुष्टामृत का पान करते हुए* दिन प्रतिदिन, द्वितीया के चन्द्रवत् बढ़ने लगे। युवावस्था प्राप्त होने पर और मान-उन्मान प्रमाण युक्त पाँच सौ धनुष ऊँचा, सर्वांग

---

* तीर्थंकर भगवान माता का स्तन-पान नहीं करते, किन्तु संक्रमित अर्थात् अंगूठे का ही पान करते हैं। तीर्थंकर भगवान की यह भी एक विशेषता है।

सुन्दर, कंचन वर्णीय एवं दैदीप्यमान सुशोभित शरीर होजाने पर, तत्सामयिक प्रथा के अनुसार, भगवान का देवी सुमंगला के साथ संसार व्यवहार प्रारम्भ हुआ।

भोग-भूमि के युगल्या स्त्री-पुरुष,समायुषी होते थे और दम्पति साथ ही जन्मते,तथा मरते थे। न कोई अकेला जन्मता ही था, न मरता ही था। इस कारण उस समय तक विवाह पद्धति का जन्म ही नहीं हुआ था। पुत्र-कन्या एक ही साथ जन्मा करते थे। और युवावस्था होने पर,वेही दोनों पति-पत्नी बन जाते थे लेकिन अवसर्पिणी काल के प्रभाव से, तीसरे आरे के अन्तिम भाग में यह नियम अस्तव्यस्त हो चला और परिस्थिति में विषमता आने लगी। इस विषय परिस्थिति के कारण, एक पुत्र कन्या के जोडे में से, पुत्र कुमारावस्था में ही शरीर त्याग गया। इस शरीर त्यागनेवाले के साथ जन्मी हुई कुवाँरी कन्या, अकेली एवं असहाय रह गई। इस असहाय कुवाँरी कन्या को, महाराजा नाभि ने शरण दी, और उसका पालन-पोषण करने लगे। जब वह कन्या युवती हुई, तब महाराजा नाभि विचार करने लगे, कि अब इस कन्या की क्या व्यवस्था करनी चाहिए? अन्ततः सबकी यही सम्मति हुई, कि यह कन्या रत्न श्री ऋषभकुमार को सौंप दिया जावे। इस प्रकार का निश्चय होजाने पर, देवों एवं इन्द्रों ने विवाह-महोत्सव किया और देवियां तथा

इन्द्रानियों ने मंगल-गान एवं विवाह विधि-पूर्वक, कुमार ऋषभ के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया। इस प्रकार इस भरत क्षेत्र में यह सर्वप्रथम विवाह हुआ और इसी विवाह से विवाह पद्धति का जन्म भी हुआ। भगवान की इन विवाहिता किन्तु द्वितीय पत्नी का नाम देवीसुनन्दा था।

दोनों पत्नीयों के साथ भगवान ऋषभदेव, आनन्द सहित समय बिताने लगे। देवीसुमंगला के उदर से, भरत नाम के पुत्र ब्राह्मी नाम की कन्या तथा ४९ युगल पुत्र उत्पन्न हुए और देवी सुनंदा के उदर से, बाहुबल नाम के पुत्र, सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के एकसौ पुत्र और दो पुत्रीयाँ हुई।

इस समय तक, भोगभूमि की व्यवस्था में बहुत परिवर्तन हो गया था। मानवी व्यवस्था के साथ ही, अन्य प्राकृतिक व्यवस्था भी बदल चली थी। पहले, मनुष्यों की आवश्यकताओं को कल्पवृक्ष पूरी किया करते थे, लेकिन अब वे भी फल रहित होने लगे थे। कल्पवृक्ष के फल रहित होते ही, मनुष्यों में हाहाकार मच गया। वे, अपनी आवश्यकताओं को लेकर, आपस में ही एक दूसरे से लड़ने लगे। नाभि राजा के पास, चारों ओर से फरियाद पर फरियाद आने लगीं। नाभि राजा भी, इस विषमता से घबरा उठे और सुधार करने के लिए आने वाले

लोगों को भगवान ऋषभदेव के पास भेजने लगे।

इस समय तक भगवान ऋषभदेव की आयु, बीस लाख पूर्व की हो चुकी थी। इधर तो नाभि महाराज के भेजे हुए पीड़ित लोग, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए और उधर इन्द्रादि देवों ने यह विचार किया, कि अब भगवान को राज-सिंहासन पर आरूढ़ होकर लोक-नीति प्रवर्तानी चाहिए। यह विचार कर, इन्द्रादि देव भी भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान को राजसिंहासन पर बैठा कर, हर्ष सहित भगवान का राज्याभिषेक किया। उसी समय इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने, बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी एक नगरी का निर्माण किया, और उस नगरी का नाम विनीता रखकर, उसमें जनताको बसाया।

राजसिंहासनारूढ होते ही, सबसे पहले भगवान ऋषभ-देव ने, परिस्थिति की विषमता से पीडित लोगों का दुःख दूर करने का निश्चय किया। तीर्थङ्कर भगवान, माता के गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित पधारते हैं। उन मति,श्रुति और अवधि नाम के तीन ज्ञान में से, अवधि, प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इससे तीर्थङ्कर भगवान, प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित होते है। भगवान ऋषभदेव भी,तीर्थङ्कर थे और प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित थे। इसलिए उन्होंने, जनता को विद्या एवं कला सिखा कर,परावलम्बी से स्वावलम्बी बनाया और लोक-नीति

का प्रादुर्भाव करके, अकर्मभूमि को कर्म-भूमि के रूप में परिणत कर दिया। भगवान ने यदि जनता को कला विद्या आदि सिखाकर, उस ओर न लगाया होता, उन्हें भूखों मरने से न बचाया होता, तो मनुष्यों में मनुष्यत्व का ही अभाव होना सम्भव था। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापं ?' अर्थात् भूखा क्या नहीं करता ? इसके अनुसार, उस समय के मनुष्य भी, भूख के मारे क्या-क्या न करने लगते ? इस प्रकार जनता का उपकार करते हुए, भगवान ऋषभदेव ने. त्रैसठ लाख पूर्व राज्य किया।

त्र्यासी लाख पूर्व की अवस्था होने पर, भगवान ऋषभदेव ने, विचार किया, कि मैंने लौकिक-नीति का प्रचार तो किया, लेकिन यदि इसी के साथ धर्म-नीति का प्रचार न हुआ, तो मनुष्य संसार में फँसे रहकर, दुर्गति के ही अधिकारी बनेंगे, संसार बन्धन से छुटने के उपाय से अनभिज्ञ रहेंगे। इसलिए लोगों को धर्म से परिचित कराना चाहिए। भगवान ने यह विचार किया, इतने में ही, ब्रह्म नाम के पाँचवें देवलोक में रहनेवाले लोकान्तिक देव, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए और भगवान से, धर्म तीर्थ प्रवर्ताने के लिए प्रार्थना की।*

---

* तीर्थङ्करों का दिक्षा-काल आने पर, लोकान्तिक देवों के लिए, इस प्रकार की प्रार्थना करना निर्धारित है।

अपने विचार एवं लोकांतिक देवों की प्रार्थना के अनुसार, भगवान ऋषभदेव ने वार्षिक-दान देना प्रारम्भ किया। वे, उदारचित्त से, एक पहर दिन चढ़ने तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्रा (सोनैया) नित्य दान करने लगे और नियमित रूप से एक वर्ष तक इसी प्रकार दान देते रहे। भगवान ऋषभदेव के राज्य-काल में, अनेक नगर बस चुके थे और राजकीय व्यवस्था भी हो चुकी थी। इसलिए वार्षिक-दान दे चुकने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को विनीता नगरी का, तथा शेष निन्यान्वे पुत्रों भिन्न-भिन्न नगरों का राज्य देकर, और माता मरुदेवी से आज्ञा प्राप्त करके, भगवान, चार सहस्र राजा युवराज आदि राजकुल एवं क्षत्रिय कुल के पुरुषों सहित, सुदर्शना पालकी में आरूढ हुए और अनेक प्रकार के वाद्य एवं मनुष्य और देवताओं के जयघोष के मध्य, विनीता नगरी के सिद्धार्थ नामक बाग में पधारे। सिद्धार्थ बाग में चैत्र कृष्ण ८ को उत्तराषाडा नक्षत्र में भगवान ने पंचमुष्टि लोंच * करके दीक्षा धारण

---

* दीक्षा लेते समय, सब तीर्थङ्कर पंचमुष्टि लोंच करते है, लेकिन भगवान ऋषभदेव से इन्द्र ने प्रार्थना की, कि हे प्रभों, शिखा बहुत सुशोभित है, इसलिए शिखा रहने दीजिये। भगवान ने इन्द्र की यह प्रार्थना स्वीकार की। कहा जाता है, कि उसी समय से लोग शिखा रखने लगे।

की। इन्द्रादि देवों ने, भगवान की दीक्षा का दीक्षा कल्याण मनाया। दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान के साथ निकले हुए चार हजार पुरुषों ने भी उसी समय दीक्षा धारण की।

साथियों सहित दीक्षा धारण करके, भगवान्, वन की ओर पधारे। भगवान जब वन की ओर पधारने लगे, तब माता मरुदेवी ने, भगवान से महल में चलने के लिए कहा, लेकिन भगवान ने कोई उत्तर न दिया। तब भगवान के ज्येष्ठ पुत्र भरत महाराज ने माता मरुदेवी से कहा, कि हे मातेश्वरी, प्रभु अब घर को न पधारेंगे, वे संसार से विरक्त हो गये है। यह बात सुनकर माता मरुदेवी, बड़े असमंजस में पड़ गई। अन्त में, इन्द्र महाराज ने, माता मरुदेवी आदि सब को समझा-बुझा कर घर भेजा और भगवान वन की ओर विहार कर गये।

इस अवसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव, सर्वप्रथम मुनि थे। इन से पूर्व, संयम में कोई प्रवर्जित नहीं हुआ था। इस कारण जनता, मुनिधर्म एवं दान-विधि से अनभिज्ञ थी। भगवान् आहार की भिक्षा के लिए जब लोगों के यहाँ पधारते, तब लोग, हर्षित होकर अनेक प्रकार के रत्नाभूषण, हाथी, घोड़ा कन्या आदि लेने के लिए भगवान को आमन्त्रित करते, लेकिन शुद्ध और एषणिक आहार-पानी लेने के लिए, कोई

प्रार्थना तक न करता। आहार पानी न मिलने के कारण, भगवान के चार हजार साथी मुनि,व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे, लेकिन भगवान मौन रहते थे। इस कारण व्याकुल होकर वे साथी मुनि, अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लगे।

—

भगवान को, निराहार रहते एक वर्ष बीत गया। विचरते विचरते वे, हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांश कुमार जो भगवान ऋषभदेव के पौत्रों मे से थे—को तथा हस्तिनापुर के लोगों को, भगवान के पधारने से पूर्व-यह स्वप्न हुआ था, कि 'सूखते हुए कल्पवृक्ष को श्रेयांश ने सींचा'। वहाँ के लोग, इस स्वप्न पर विचार ही कर रहे थे, इतने ही में भगवान हस्तिनापुर में पधारे। श्रेयांश कुमार को, भगवान ऋषभदेवके दर्शन करते ही, जाति-स्मृति ज्ञान हुआ। अपने पूर्वभव को जान कर श्रेयांश कुमार ने, सर्व प्रथम भगवान को आहार के लिए आमंत्रित किया। भगवान को लेकर श्रेयांस कुमार, स्वस्थ-ग्रह में आये, परन्तु वहाँ निर्दोष प्रासुक आहार नही था। केवल इक्षुरस के भेंट में आये हुए घड़े रखे थे। श्रेयांस कुमार की प्रार्थना पर, भगवान ने अपने कर पात्र में इक्षु-रस लेकर, वैशाख शुक्ल तृतिया को एक वर्ष के तप का पारणा किया। तभी से वैशाख शुक्ल तृतिया का नाम अक्षय-तृतिया हुआ। श्रेयांश कुमार के इस दान की

महिमा बताने के लिए इन्द्रादिक देव ने, पांच दिव्य प्रकट करके, लोगों को इस प्रकार के दान का माहात्म्य बताया। भगवान का पारणा हुआ जानकर, लोगों को बड़ा हर्ष हुआ। उसी समय से लोग, मुनि को दान देने की विधि भी समझने लगे।

भगवान, हस्तिनापुर नगर से विहार कर गये और जनपद देश-में विचरने लगे। वे एक हजार वर्ष तक, ध्यान मौन और तपादि द्वारा कर्मों का नाश करते हुए, छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। भगवान, विचरते-विचरते पुरिमताल नगर के शकटमुख वन में पधारे। उस वन में अष्टमतप करके भगवान, वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग में लीन हुए। शुभ और शुद्ध अध्यवसाय की वृद्धि से, शुक्ल-ध्यान में प्रवेश करके, भगवान् ने, मोहकर्म की कषाय तथा नोकषायी प्रकृतियों का क्षय किया और क्रमशः आठवें, नववें दसवें तथा बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर भगवान ने, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्म को एक साथ युगपत् क्षय करके फाल्गुन कृष्ण एकादशी को जब चन्द्र, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में था तब समग्र अनन्तपूर्ण, निर्व्याघ और निरावरण केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन, प्राप्त किया।

भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह ज्ञान

कर, इन्द्र और देवताओं ने, केवलज्ञान की महिमा की उन्होंने, समवशरण की रचना की, जिसमें देव-देवी, मानि मानवी, और तिर्यक-तिर्यकनी आदि बारह प्रकारकी परिष प्रभू का उपदेशामृत पान करने के लिए एकत्रित हुई।

जब से भगवान दीक्षा लेकर विनीता नगरी से विहार क गये, तब से भगवान की कुशल के समाचार माता मरुदेव को नहीं मिले। इस कारण माता मरुदेवी, चिन्तातुर हो रह थीं। जिस समय माता मरुदेवी भगवान के लिए चिन्ता क रही थीं, उसी समय उनके पौत्र भरत महाराज, अपनी पित मही के चरण वन्दन को गये। पितामही मरुदेवी को चिन्ति देख कर, भरत महाराज ने उनसे पूछा-हे माता, आप चिन्ति क्यों है? पौत्र के प्रश्न के उत्तर में माता मरुदेवी ने, चिन्त का कारण कह सुनाया। भरत महाराज ने प्रार्थना की, माता, पिताश्री कर्मशत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए तपराध कर रहे हैं। उन्हें शीघ्र ही केवलज्ञान होगा। उस समय आ उन की अपूर्व सम्पत्ति का अवलोकन करके, अपनी कोंख क धन्य मानेंगी। भरत महाराज यह प्रार्थना कर ही चुके थे कि इतने में एक पुरुष ने भरत महाराज को, भगवान के केवल ज्ञान उत्पन्न होने की बधाई दी। इस बधाई के साथ ह भरत महाराज को, दूसरे पुरुष ने आयुधशाला में महातेजस्व चक्ररत्न प्रकट होने की बधाई दी और तीसरे पुरुष ने, पु

जन्म की बधाई दी। तीनों बधाइयाँ मिल जाने पर, भरत महाराज ने, सब से पहले भगवान को वन्दन करने के लिए जाने की तैयारी कराई और माता मरुदेवी से भी पधारने की प्रार्थना की। सपरिवार भरत महाराज ने, भगवान को वन्दन करने के लिए प्रस्थान किया। गजारूढ माता मरुदेवी भी साथ पधारी।

भगवान के समवशरण के समीप पहुँच कर, और देवों का आवागमन एवं केवलज्ञान के साथ प्रकट होने वाले अष्ट प्रतिहार्यादि विभूति देखकर माता मरुदेवी आश्चर्य बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें, भगवान के समवशरण के दर्शन से ऐसा हर्ष हुआ कि हाथी पर बैठे ही बैठे उन्होंने, अध्यवसाय की शुद्धि तथा अपूर्व करण एवं शुक्ल ध्यान के योग से घातक कर्म क्षय करके अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि प्राप्त कर ली। इतना ही नहीं, किन्तु आयुष्य का अन्त आ जाने से, हाथी पर ही सब कर्मों को नाश कर सिद्ध गति को प्राप्त हुईं।

माता मरुदेवी तो हाथी पर बैठे ही बैठे सिद्ध गति में पधार गईं। भरत महाराज, भगवान को विनय पूर्वक नमस्कार करके सेवा में बैठे। उस समय तीर्थनाथ भगवान ऋषभ स्वामी ने सर्व भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पैंतीस वचनातिशय युक्त, धर्मोपदेशों का प्रकाश किया, जिससे भव्य जीवों को

अपूर्व शान्ति मिली। भगवान की अमोघ-वाणी से बोध पाकर, भरत महाराज के पुत्र ऋषभसेन ने पाँच सौ पुत्रों एवं सात सौ पौत्रों के साथ और सती ब्राह्मी ने अनेक स्त्रियों के साथ, भगवान से मुनि धर्म स्वीकार किया। भरत महाराज के साथ आये हुए लोगों में से शेष ने, श्रावक व्रत लिये और भरत महाराज ने भी, सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान ऋषभदेव के ८४ गणधर ८४००० मुनि ३००००० साध्वी, २०५००० श्रावक और ५५४००० श्राविका हुई। केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात वे एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व तक जनपद में विचरते और दुःखी जीवों का उद्धार करते रहे। निर्वाण काल समीप जानकर, भगवान ऋषभदेव, दस हजार मुनियों के साथ अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ सब ने अनशन किया। भगवान और उनके साथी सन्तों का अनशन छः दिन तक चलता रहा। पश्चात माघ कृष्ण १३ को चन्द्र का योग अभीच नक्षत्र में आने पर भगवान ने पर्यङ्कासन में शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाद का अवलम्बन लिया तथा मन वचन काय के योग को रोक कर, चार अघातिक कर्मों का नाश किया और सिद्ध गति को प्राप्त हुए। यानी मोक्ष पधारे। भगवान मोक्ष पधारे तब इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा समाप्त होने में, तीन वर्ष साढे सात महीने शेष थे।

जिस समय भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे, उसी समय में अन्य १०७ पुरुष भी सिद्ध हुए। इस बात की गणना उन्हीं दस आश्चर्य की बातों में है, जो इस अवसर्पिणी काल में हुई हैं। भगवान के साथ अनशन करनेवाले दस हजार मुनि भी, उसी नक्षत्र में मोक्ष पधारे, जिस नक्षत्र में भगवान मोक्ष पधारे थे। इनके शरीर का अन्तिम संस्कार, इन्द्र तथा देवताओं ने किया पश्चात सब देवी देव ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, भगवान का निर्वाण कल्याण मनाया और अष्टान्हिका महोत्सव करके अपने-अपने स्थान को गये।

इति श्री ऋषभ-चरित्र समाप्त।

प्रश्न—

१—आप भगवान ऋषभदेव के कितने पूर्व-भव का चरित्र जानते हैं?

२—भगवान ऋषभदेव ने तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य का सम्पादन किस भव में और किस कार्य के द्वारा किया था?

३—भोग भूमि का जीवन अच्छा था, या कर्म भूमि का?

४—जीवानन्द वैद्य का भव पाने के पश्चात, भगवान ने और कितने भव किये?

६—इस चरित्र की कौन-कौन सी बात ग्रहण करने योग्य है ?

७—चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने का उत्सव पहले न करके, वज्रनाभ ने, वज्रसेन तीर्थङ्कर को केवलज्ञान उत्पन्न होने का उत्सव पहले क्यों क्या ? जब कि चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने की बधाई पहले मिली थी और केवलज्ञान उत्पन्न होने की बधाई पश्चात मिली थी ।

८- भगवान ऋषभदेव को सर्वप्रथम मुनि और तीर्थङ्कर क्यों माना ? जब कि इसी चरित्र में,दूसरे मुनियों एवं तीर्थङ्कर का होना आप पढ़ चुके हैं ।
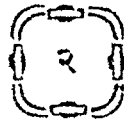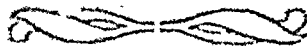
२

भगवान श्री अजितनाथ ।

पूर्व-भव

श्लोक—

सद्युक्ति मुक्ति तरुणी निरतं निरस्त,
रागानलस्मर परं जित शत्रु मातम् ।
अन्तर्विन विजयाङ्क जभाल धर्म,
रामा नव स्मर परं जितशत्रु जातम् ॥

जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेहक्षेत्र में, 'वत्स्य' नाम का
जय था। उस विजय में, सुसीमा नामकी एक रमणीय
गरी थी। वहां का राजा विमलवाहन, अनेक गुण-संयुक्त
ौर प्रजापालक था।

राजा विमलवाहन को, एक समय बैठे-बैठे यह विचार
हुआ, कि 'संसार के समस्त पदार्थ क्षणिक और अस्थायी हैं,
फिर भी प्राणी, मोह के वश होकर अपने-आपको भूल जाता
है और संसार के पदार्थों में ऐसा फँस जाता है, कि उसे
अपने हिताहित का ध्यान ही नहीं रहता। जो मनुष्य शरीर,
अनन्त पुण्योदय से प्राप्त हुआ है, उसे भोग-विलास और
कुटुम्ब परिवार के ममत्व में ही खो देता है, सच्चे हितकारी
धर्म की आराधना नहीं करता। अन्त में खाली हाथ परलोक
का पथिक बनता हैं,जहां अनेक यन्त्रणा सहता हैं। मुझे उचित
हैं, कि अभी शरीर स्वस्थ हैं, इन्द्रियां शिथिल नहीं हुई हैं,
इसलिये धर्माराधन द्वारा आत्म कल्याण करलूँ।'

राजा विमलवाहन, इस प्रकार विचार करही रहा था,
इतने में ही यह सूचना, मिली, कि नगरी के बाहर उद्यान में
अरिंदम नाम के सूरि पधारे हैं। यह शुभ समाचार सुनकर,
राजा विमलवाहन बहुत हर्षित हुआ और सपरिवार,सूरीजी
को वन्दन करने चला। उद्यान के समीप पहुंचकर विमलवाहन

पर से उतर पड़ा और मुनि की सेवा में उपस्थित होकर
विधि सहित वन्दना की। वन्दना कर चुकने के पश्चात,राज
से प्रार्थना करने लगा 'हे प्रभो', संसार रूपी विष-वृक्ष के
दुःख रूपी फलों का दुष्परिणाम भोगकर भी, संसार के
संसार से विरक्त नहीं होते ऐसा मैं देख रहा हूं,इसलिए मैं
जानने का इच्छुक हूं कि आपको संसार से क्यों और
विरक्ति हुई ?

राजा विमलवाहन के प्रश्न के उत्तर में आचार्य अरिंदम
लगे राजन, विवेकवानों के लिए संसार की समस्त बाते
ग्य उत्पन्न करने वाली ही हैं। हाँ.संसार की समस्त बातों
कोई-कोई बात वैराग्य का हेतु अवश्य बन जाती हैं।
बात मेरे लिए भी हुई। मैं जब गृहस्थाश्रम में था, तब
रंगिनी सेना लेकर दिग्विजय के लिए चला। रास्ते में एक
और आनन्ददायक बाग मिला। मैंने सेना सहित उस
में विश्राम किया और फिर आगे चला गया। जब मैं
ग्विजय कर वापिस लौटा तब फिर उसी बाग के मार्ग से
ा। उस समय मैंने देखा, कि जो बाग पथिक को आल्हाद
यक था, वह इस समय सूना पड़ा है। बाग की यह दशा
कर, मुझे मनुष्यशरीर के विषय में भी अनेक विचार हुए।
ोचने लगा, कि यह सुन्दर मनुष्यशरीर यौवन बीत जाने

पर किस प्रकार क्षीण हो जाता हैं। जो लोग यौवन में उसी शरीर से प्रेम करते हैं वही वृद्धावस्था आने पर और शरीर के रोग-ग्रस्त होने पर, किस प्रकार घृणा करने लगते हैं? वास्तव में, यह संसार ही अस्थिर हैं। इसका कोई पदार्थ या इसमें का कोई प्राणी, एक ही अवस्था में नही रह सकता।

राजन्, इस प्रकार विचार करते करते मुझे संसार से विरक्ति होगई। मेरे हृदय में, वैराग्य का अंकुर उत्पन्न होगया। परिणामतः मैंने, राज-पाट त्यागकर, चिन्तामणि रत्न समान उज्ज्वल और पवित्र चरित्र को स्वीकार कर लिय।

राजा विमलवाहन के हृदय में, संसार की ओर से पहले ही विरक्ति-सी हो रही थी। आचार्य अरिदम का कथन सुनकर उसे संसार से बिलकुल ही विरक्ति होगई। उसने आचार्य से प्रार्थना की, हे दयासिन्धु, मैं, नगरी में, जाकर राज पाट कुमार को सौंप आपकी सेवा में फिर उपस्थित होऊं वहाँ तक आप यहीं विराजे रहिए। मेरा विचार, आपसे चरित्र स्वीकार करने का हैं। राजा की प्रार्थना के उत्तर में, आचार्य अरिदम ने फर्माया राजन्, भव्य जीवों के कल्याण में सहायक होना ही हमारा काम हैं, इसलिए तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हैं। तुम जिस कार्य को श्रेयस्कर समझते हो, प्रमाद रहित उसे शीघ्र करो।

राजा विमलवाहन, सुसीमा नगरी में वापस आया। उसने

राजसिंहासन पर बैठ कर, अपने मंत्रियों को बुलवाया और उनसे कहने लगा-हे मंत्रियो, आज तक आप मुझे राजभार वहन करने में सहायता करते रहे, लेकिन अब मेरी इच्छा, राजकुमार को सिंहासनारूढ़ करके दीक्षा लेने की है, अतः आप लोग मुझे इस कार्य में भी सहायता दीजिये। राजा ने, उसी समय राजकुमार को भी बुलवाया। राजकुमार के आ जाने पर राजा विमलवाहन ने, राजकुमार को सिंहासनारूढ कर, राजपाट उसे सौंप दिया और आप आचार्य अरिंदम के पास दीक्षा लेने के लिए चला। राजकुमार-जो अब राजा बन चुका था-ने अपने पिता का निष्क्रमणोत्सव किया। राजा विमलवाहन ने, आचार्य अरिंदम की सेवा में उपस्थित होकर उनसे संयम स्वीकार किया और समिति गुप्ति आदि का पालन करते हुए, जनपद में विचरने लगे। मुनि विमलवाहन, चौथ, छट्ठ, अष्टम, एकावलि, रत्नावलि, कनकावलि आदि तप करने लगे और भगवान अभिनन्दन जिन के ध्यान में तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार विशुद्ध भावना से उन्होंने, तीर्थंकर नाम कर्म का सम्पादन किया। अन्त में अनशन करके बाईसवें कल्प-विजय विमान में अहमिन्द्र पदधारी देव हुए। वहां उन्होंने, बत्तीस सागर तक उत्कृष्ट सुखों का अनुभव किया।

पर किस प्रकार क्षीण हो जाता हैं। जो लोग यौवन में उसी शरीर से प्रेम करते हैं वही वृद्धावस्था आने पर और शरीर के रोग-ग्रस्त होने पर, किस प्रकार घृणा करने लगते हैं? वास्तव में, यह संसार ही अस्थिर हैं। इसका कोई पदार्थ या इसमें का कोई प्राणी, एक ही अवस्था में नही रह सकता।

राजन्, इस प्रकार विचार करते करते मुझे संसार से विरक्ति होगई। मेरे हृदय में, वैराग्य का अंकुर उत्पन्न होगया। परिणामतः मैंने, राज-पाट त्यागकर, चिन्तामणि रत्न समान उज्वल और पवित्र चरित्र को स्वीकार कर लिय।

राजा विमलवाहन के हृदय में, संसार की ओर से पहले ही विरक्ति-सी हो रही थी। आचार्य अरिदम का कथन सुनकर उसे संसार से बिलकुल ही विरक्ति होगई। उसने आचार्य से प्रार्थना की, हे दयासिन्धु, मैं, नगरी में जाकर राज पाट कुमार को सौंप आपकी सेवा में फिर उपस्थित होऊं वहाँ तक आप यहीं विराजे रहिए। मेरा विचार, आपसे चरित्र स्वीकार करने का हैं। राजा की प्रार्थना के उत्तर में, आचार्य अरिदम ने फर्माया राजन्, भव्य जीवों के कल्याण में सहायक होना ही हमारा काम हैं, इसलिए तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हैं। तुम जिस कार्य को श्रेयस्कर समझते हो, प्रमाद रहित उसे शीघ्र करो।

राजा विमलवाहन, सुसीमा नगरी में वापस आया। उस

राजसिंहासन पर बैठ कर, अपने मंत्रियों को बुलवाया और उनसे कहने लगा—हे मंत्रियो, आज तक आप मुझे राजभार वहन करने में सहायता करते रहे, लेकिन अब मेरी इच्छा, राजकुमार को सिंहासनारूढ़ करके दीक्षा लेने की है, अतः आप लोग मुझे इस कार्य में भी सहायता दीजिये। राजा ने, उसी समय राजकुमार को भी बुलवाया। राजकुमार के आ जाने पर राजा विमलवाहन ने, राजकुमार को सिंहासनारूढ कर, राजपाट उसे सौंप दिया और आप आचार्य अरिंदम के पास दीक्षा लेने के लिए चला। राजाकुमार—जो अब राजा बन चुका था—ने अपने पिता का निष्क्रमणोत्सव किया। राजा विमलवाहन ने, आचार्य अरिंदम की सेवा में उपस्थित होकर उनसे संयम स्वीकार किया और समिति गुप्ति आदि का पालन करते हुए, जनपद में विचरने लगे। मुनि विमलवाहन, चौथ, छट्ठ, अष्टम, एकावलि, रत्नावलि, कनकावलि आदि तप करने लगे और भगवान अरिहन्त सिद्ध के ध्यान में तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार विशुद्ध भावना से उन्होंने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का सम्पादन किया। अन्त में अनशन करके बाईसवें कल्प-विजय विमान में अहमिन्द्र पदधारी देव हुए। वहाँ उन्होंने, बत्तीस सागर तक उत्कृष्ट सुखों का अनुभव किया।

अन्तिम भव।

इस जम्बू द्वीप के मण्डन रूप भरत क्षेत्र के बीचों बीच में वैताढ्य पर्वत पड़ गया हैं,इससे दो भाग हो गये हैं। दक्षिण भरतार्द्ध में, अयोध्या नाम की एक नगरी थी। अयोध्या नगरी, पृथ्वी की लक्ष्मी और स्वर्ग-सम्पदा से स्पर्द्धा करने वाली मानी जाती थी। वहाँ, ईक्ष्वाकुकुल भूषण भगवान आदिनाथ के वंशज, जितशत्रु नाम के राजा, राज्य करते थे। जितशत्रु का असीम पराक्रमी छोटा भाई, सुमित्रविजय था, जिसे युवराज पद प्राप्त था।

महाराज जितशत्रु की विजयादेवी नाम्नी पटरानी,शीलादि गुणों से युक्त थी। वह, पतिपरायणा भी थी, और स्त्रियोचित गुणों से पूर्ण होने के कारण पति की कृपापात्रा भी थी।

अवसर्पिणीकाल का चौथा आरा, आधे के लगभग व्यतीत हो चुका था। उस समय, वैशाख शुक्ल १३ की रात में जब सब ग्रह उच्च स्थान पर थे—विमलवाहन मुनि का जीव, विजयविमान का आयुष्य समाप्त करके, विजया देवी के गर्भ में आया। महारानी विजया देवी, सो रही थीं। उन्होंने, तीर्थंकर के गर्भ कल्याण सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देख कर,महारानी विजया देवी जाग उठीं। स्वप्नों का विचार

करके, उन्हें बहुत हर्ष हुआ और वे हर्षित-हर्षित महाराजा जितशत्रु के शयनागार में आई। महाराजा जितशत्रु भी, उस समय सो रहे थे। महारानी ने, मधुर शब्दों के आलाप द्वारा, महाराजा को जगाया और अपने स्वप्न सुनाये। स्वप्नों को सुनकर, महाराजा भी प्रसन्न हुए। उन्होंने महारानी से कहा, कि स्वप्नों को देखते हुए, तुम्हारी कोख से महाभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। महाराजा की इस बात को महारानी ने हर्ष एवं आदर सहित सुना और आनन्दित होती हुई, अपने शयनागार को लौट आई।

राजा जितशत्रु के छोटे भाई, युवराज सुमित्रविजय की रानी वैजन्ती ने भी, इसी रात में महारानी विजयादेवी की ही तरह चौदह महास्वप्न देखे। अन्तर केवल इतना ही था, कि विजयादेवी के देखे हुए स्वप्न प्रशस्त थे और वैजन्ती के साधारण। स्वप्न देखकर, वैजन्ती भी जागृत हो उठी। पति के शयनागार में आकर वैजन्ती ने, स्वप्नों का विस्तृत समाचार सुमित्रविजय को सुनाया। स्वप्नों को सुनकर, सुमित्रविजय ने वैजन्ती से कहा, कि इन स्वप्नों के प्रभाव से, तुम उत्तम पुत्ररत्न प्रसव करोगी। पति के कथन को सुनकर, वैजन्ती हर्षित होती हुई, अपने महल में चली गई।

विजयादेवी और वैजन्ती, दोनों ही ने स्वप्न देखने के पश्चात् शेष रात्रि, धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल महाराजा

जितशत्रु, विजयादेवी के देखे हुए स्वप्नों का विचार कर रहे थे, इतने ही में युवराज सुमित्रविजय आये। बड़े भ्राता को प्रणाम करने के पश्चात्, सुमित्रविजय, महाराजा जितशत्रु से कहने लगे पूज्य भ्राताजी, आज रात के अन्तिम भाग में आपकी अनुजवधू ने, इस प्रकार के चौदह स्वप्न देखे हैं। आप स्वप्नशास्त्र के जानकार हैं, अतः इन स्वप्नों का विचार कीजिये। सुमित्रविजय की बात ने महाराज अजितशत्रु को द्विगुण आनन्दित कर दिया। उन्होंने तत्क्षण स्वप्न पाठकों को बुलाकर, उन्हें विजयादेवी एवं वैजन्ती के देखे हुए स्वप्न सुनाये और स्वप्नों का फल पूछा। आपस में मन्त्रणा करके स्वप्नपाठक कहने लगे 'महाराज स्वप्न शास्त्रानुसार जब तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता, इस प्रकार के चौदह महास्वप्न देखती हैं। महारानी एवं युवराज्ञी ने, भी वे ही स्वप्न देखे हैं, किन्तु दो तीर्थङ्कर या दो चक्रवर्ती एक साथ जन्में, यह नहीं हो सकता। इसलिए महारानी और युवराज्ञी में से एक तीर्थङ्कर को और दूसरी चक्रवर्ती को जन्म देगी। हमने आप्त पुरुषों से सुन रखा हैं, कि भगवान ऋषभदेव के पश्चात् भगवान अजितनाथ तीर्थंकर होंगे और वे जितशत्रु राजा तथा विजया रानी के यहां जन्मेंगे। इसके अनुसार, महारानी विजया देवी तीर्थङ्कर की जन्मदात्री होंगी और युवराज्ञी वैजन्ती देवी चक्रवर्ती की माता होंगी।'

स्वप्नपाठकों से स्वप्नों का फल सुनकर राजा युवराज, महारानी और युवराज्ञी आदि समस्त परिवार बहुत हर्षित हुआ। महाराजा जितशत्रु ने, स्वप्नपाठकों का खूब सम्मान किया और बहुत द्रव्य देकर, उन्हें बिदा किया।

विजया देवी और वैजन्ती देवी, हर्ष सहित सावधानी से गर्भ का पोषण करने लगीं। उधर इन्द्रादि देवों को यह ज्ञात हुआ, कि तीर्थङ्कर भगवान गर्भ में पधारे हैं, इसलिए वे बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने, भगवान का गर्भ कल्याणोत्सव मनाया। अनेक देव देवी, माता विजयादेवी की सेवा में भी रहने लगे।

नव मास पूर्ण होने पर, माघ शुक्ल ८ की रात की रोहिणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग मिलने पर, महारानी विजया देवी ने, हाथी के मुख्य लक्षण वाले, सोहनवर्णीय पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, क्षणभर के लिए तीनों लोक में उद्योत हुआ, और नारकीय जीवों की ताड़ना भी बन्द हो गई। भगवान का जन्म होते ही, इन्द्रादि के आसन कम्पित हुए, जिससे अवधिज्ञान द्वारा उन्होंने भगवान का जन्म होना जान लिया। भगवान का जन्म जानकर, इन्द्रादि देव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अपनी ऋद्धि सहित नियत स्थान पर उपस्थित होकर, भगवान का जन्म कल्याण मनाया।

भगवान का जन्म होने के कुछ ही समय पश्चात् उसी रात में, युवराज्ञी वैजन्ती देवी ने भी, एक भाग्यशाली पुत्र जन्मा। विजयादेवी और वैजन्तीदेवी, दोनों की परिचारिकाओं ने, एक ही समय में महाराजा जित शत्रु को, पुत्र जन्म की बधाइयाँ दीं। महाराजा जितशत्रु ने, दोनों परिचारिकाओं को बहुत द्रव्य देकर, उनका सम्मान बढ़ाया और दोनों पुत्र का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया।

दोनों भाई जितशत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ, और सुमित्रविजय के पुत्र सगरकुमार पार्वतीय गुफा की लता के समान सुरक्षित रूप में बढ़ने लगे। दोनों ही, बाल्यावस्था से निकलकर, किशोरावस्था में प्रविष्ट हुए। उस समय दोनों ही महान तेजस्वी, और अतुल बलवान थे। दोनों के शरीर भी सुन्दर, सर्वाङ्गपूर्ण, स्वस्थ और ४५० धनुष ऊँचे थे।

कुमार अजितनाथ तो तीर्थङ्कर, थे। तीर्थङ्कर, माता के गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित आते हैं, इसलिए कुमार अजितनाथ, सब कलाओं शास्त्रों और विद्याओं के पारगामी थे। इन्हें, किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता न थी। सगरकुमार, शुभ मुहूर्त में कलाचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए भेजे गये। इन्होंने थोड़े ही समय में समस्त विद्याएँ सीखलीं और सब कलाओं के भी पारंगत हो गये। इतना ही

नहीं, किन्तु वे विनयादि समस्त गुणों से भी भूषित हो गये।

कुमार अजितनाथ की, समय समय पर अनेक देव देवी सेवा करने के लिए आया करते थे। इन्द्र और देवों की सम्मति से, एक समय, महाराजा जितशत्रु, अजितकुमार से कहने लगे हे वत्स, हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखना चाहते हैं, हमारी यह अभिलाषा पूरी करो। यद्यपि कुमार अजितनाथ तीर्थङ्कर थे, और भविष्य में संसार-बंधन को सर्वथा त्यागना था, फिर भी, भोग का फल देने वाले कर्म शेष हैं, यह जानकर कुमार अजितनाथ, पिता की बात पर चुप रहे। महाराजा जितशत्रु ने विवाहोत्सव करके अजितकुमार और सगरकुमार के साथ अनेक राजकन्याओं का विवाह कर दिया। भोग का फल देने-वाले कर्मों को खपाने के लिए, कुमार अजितनाथ, अपनी रानियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे। सगरकुमार भी, अपनी रानियों के मध्य उसी प्रकार जीवन व्यतीत करने लगे जिस प्रकार हथिनियों के मध्य में हाथी। इस तरह अठारह लाख पूर्व बीत गये। महाराजा जितशत्रु और युवराज सुमित्र विजयको संसार से वैराग्य हो गया, इसलिए इन दोनों ने राज्य का भार कुमार अजितनाथ को सौंप दिया, और आप दोनों, भगवान ऋषभदेव के शासन के स्थविर मुनि के पास संयम में दीक्षित हो गए। अन्त में, दोनों भाइयों ने अपने

अपने कर्मक्षय कर दिये और दोनों ही, मोक्ष पधार गये।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार को अपना युवराज बनाया और निर्विघ्न रूप से राज्य चलाने लगे। जहाँ के राजा स्वयं तीर्थंकर हों, वहाँ के सुखों का तो कहना ही क्या? प्रजा, सुखपूर्वक रहती थी। इस प्रकार राज्य करते हुए, महाराज अजितनाथ को त्रैपन लाख पूर्व बीत गये।

एक दिन महाराजा अजितनाथ, राजकार्य से निवृत्त हो, एकान्त में बैठकर विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया, कि मेरे भोग फल के देनेवाले कर्म बहुतांश में क्षप गये हैं, इसलिए अब मुझे गृहस्थाश्रम में रहना उचित नहीं किन्तु चारित्र लेकर, धर्म का उत्थान एवं भव्य जीवों का कल्याण करना चाहिए। भगवान ने, इस प्रकार निश्चय किया ही था, कि उसी समय ब्रह्मकल्पवासी लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब धर्म और तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान् स्वयंबुद्ध ही थे, इसलिए देवताओं की प्रार्थना को दृष्टि में रखकर अपने निश्चय के अनुसार, उन्होंने सगरकुमार को बुलवाया और उनसे कहने लगे 'हे बन्धु इस वंशागत राज्य का भार अब तुम स्वीकार करो। क्योंकि, मेरे लिए चारित्र ग्रहण करने का समय आगया है।' ज्येष्ठ भ्राता कि बात सुनकर, सगरकुमार, आँखों से जल बहाते हुए भगवान

से कहने लगे-'हे प्रभो, कहीं मुझ से कोई अपराध तो नहीं हुआ है, जो आप मुझे त्याग रहे हैं ? जब आप राजा हैं, तब मैं युवराज के रूप में आपकी सेवा करता हूँ, फिर अब आप के चारित्र लेने पर मैं आपकी सेवा से क्यों विमुख रहूं ? आप के चारित्र लेने पर भी, मैं आपका शिष्य बनकर आपकी सेवा करूँगा।' भगवाग ने उत्तर दिया, वत्स ! तुम्हारे लिए अभी चारित्र ग्रहण करने का समय नहीं आया है, क्योंकि तुम्हारे भोगफल देनेवाले कर्म अभी शेष हैं। भोगफल देनेवाले शुभ कर्मों को निःशेष कर, समय आने पर चारित्र लेना। ज्येष्ठ भ्राता की यह आज्ञा सुनकर, सगरकुमार चुप रहे।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार का, विधिपूर्वक राज्याभिषेक करके, राजभार उन्हें सौंप दिया और आप, वार्षिकदान देने लगे। वार्षिकदान देते एक वर्ष बीत जाने पर, इन्द्रों के आसन कम्पित हुए। उन्होंने अवधिज्ञान द्वारा, भगवान का दीक्षा कल्याण समय जान लिया, और परिवार सहित अयोध्या में आ, भगवान को प्रणाम कर, भगवान के निष्क्रमणोत्सव की तयारी की। इन्द्रादि देव तथा सगरादि नरेन्द्रों ने भगवान का अभिषेक करके उन्हें, दिव्य वस्त्रालंकार पहनाये और सुप्रभा शिविका में आरूढ़ किया। शिविकारूढ भगवान, देव तथा मनुष्य वृन्द से घिरे हुए, अयोध्या के बाहर

सहस्राम्र बाग में पधारे। बाग में पहुँच कर और शिविका से उतर कर, भगवान ने, सब वस्त्राभूषण त्याग दिये पश्चात् अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके, माघ शुक्ल ९ के दिन-जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में आया था-भगवान ने, सर्व सावद्य त्याग रूप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही, भगवान को मनः पर्यय ज्ञान हुआ। इस अवसर पर, नारकीय जीवों को भी प्रसन्नता हुई।

भगवान के साथ ही,एक सहस्त्र राजाओं ने भी दीक्षा ली इन्द्रादि देव और सगर राजा ने,भगवान को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके, सगर राजा तो अपने स्थान को गये और देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टान्हिका महोत्सव मनाया, पश्चात् अपने अपने स्थान को गये। इस प्रकार भगवान का दीक्षा कल्याण हुआ।

दीक्षा ग्रहण करके, भगवान, अपने साथी मुनियों सहित अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ भगवान का, छट्ठ तप (बेला) का पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने, दान की महिमा प्रकट करने के लिए, साढे बारह क्रोड़ स्वर्ण मुद्रा की एवं पाँच दिव्य प्रकट किये।

भगवान, समिति गुप्ति का पालन एवं अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, देह की ओर से भी निर्ममत्व होकर, बारह वर्ष तक

छद्मस्थावस्था में अनेक उपसर्ग सहते हुए विचरते रहे। इतने काल में वे, पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा कर चुके थे। पश्चात् भगवान विचरते विचरते अयोध्या नगरी के उसी सहस्त्रा भवन में पधारे। वहाँ सतच्छेद नाम के वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग करके भगवान, ध्यान में निमग्न खड़े रहे। इस ध्यान के द्वारा भगवान, सप्तम अप्रमत्त गुण स्थान से अपूर्व करण करके, आठवें नवमें और फिर दसवें गुण स्थान में पहुँचे और उन्होंने पहले मोह कर्म तथा फिर ज्ञानावरणीय आदि तीन कर्म नष्ट किये। इस प्रकार,पौष शुक्ल एकादशी के दिन जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में था भगवान अजितनाथ को केवलज्ञान एवं केवल दर्शन प्राप्त हुए।

केवल ज्ञान की महिमा, अगम्य है। जो महापुरुष केवल ज्ञानी होते हैं, वे, तीनों लोक के त्रिकालवर्ती भावों को, हस्त-रेखा के समान देखते एवं जानते हैं।

भगवान अजितनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, यह जानकर,अच्युतादि चौंसठ इन्द्र एवं असंख्य देव देवी,भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई। भगवान अजितनाथ, अष्ट प्रतिहार चौंतीस अतिशय आदि जिनेश्वर की विभूति से युक्त होकर, समवशरण में विराजे।

उद्यान रक्षक द्वारा, भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त होने का शुभ समाचार, सगरचक्रवर्ती को प्राप्त हुए। यह शुभ ...

सुन कर सगरचक्रवर्ती बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, साढे बारह क्रोड़ स्वर्णमुद्रा, यह समाचार लाने वाले उद्यान-रक्षक को पुरस्कार दीं और आप अजितनाथ भगवान के दर्शन करने को चले। सहस्राम्र उद्यान के समीप पहूँच कर सगरचक्रवर्ती ने पाँच अभिगमन किये और भगवान की सेवा में उपस्थित होकर भगवान की वन्दना करके समवशरण में बैठे। भगवान ने,भव भ्रमण रूपी व्याधि का नाश करनेवाली औषधि के समान उपदेश सुनाया, जिससे सहस्रों नर नारी ने बोध पाकर, भगवान से संयम स्वीकार किया। फिर भगवान सहस्राम्र वन से विहार कर गये।

एक समय,जिनेश्वर अजितनाथ कौशम्बी नगरी के समीप पधारे। वहाँ एक ब्राह्मण ने भगवान से पूछाः—प्रभो यह ऐसे कैसे ? भगवान ने उत्तर दिया, यह सब सम्यक्त्व की महिमा है। उस समय वहाँ उपस्थित भगवान के प्रधान गणधर सिंहसेन मुनि यद्यपि सर्वाक्षर सन्निपाती होने के कारण, ज्ञान द्वारा इस गूढ़ प्रश्नोत्तर को जान गये थे, फिर भी, भव्य जीवों के कल्याणार्थ उन्होंने भगवान से पूछा स्वामिन, इस ब्राह्मण ने क्या पूछा और आपने क्या उत्तर दिया ? स्पष्ट कहने की कृपा करें। भगवान फरमाने लगे, कि—इस नगरी के सन्निकट, एक शालिग्राम नाम का गाँव है। वहाँ, दामोदर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। दामोदर की स्त्री का नाम सोमा था। इनके

शुद्धभट्ट नाम का पुत्र था, जिसका विवाह सुलक्षणा नाम की स्त्री के साथ हुआ था। शुद्धभट्ट और सुलक्षणा आनन्द से सांसारिक भोग भोगने लगे। थोड़े समय में, दामोदर और उसकी पत्नी सोमा, परलोकवासी हुए। शुद्धभट्ट, माता-पिता विहीन होने के थोड़े ही समय पश्चात्, धन वैभव से भी हीन हो गया। पत्नी सहित शुद्धभट्ट, दरिद्रावस्था भोगने लगे। दरिद्रता के कष्ट से दुःखित होकर, लज्जावश शुद्धभट्ट अपनी पत्नी से बिना कुछ कहे ही विदेश चला गया। सुलक्षणा, दरिद्रता के साथ ही पति वियोग के दुःख से दुःखित रहने लगी। उन्हीं दिनों में, वर्षा काल एक स्थान पर व्यतीत करने के अभिप्राय से विपुला नाम की एक आर्यिका, सुलक्षणा के यहाँ आई। सुलक्षणा ने विपुलासाध्वी जी की नियमित रूप में सेवा करने लगी। साध्वी जी का उपदेश सुनकर और धर्म की श्रेष्ठता जानकर सुलक्षणा ने, विपुला साध्वी से सम्यक्त्व ग्रहण करने के साथ ही, श्रावक व्रत भी स्वीकार किये।

वर्षाकाल समाप्त होने पर, साध्वीजी चली गई, परन्तु सुलक्षणा धर्मश्रद्धा पर दृढ रही और श्रावकव्रत का पालन करती रही। धर्म सेवा में लीन रहते हुए उसने, दारिद्र्य एवं पतिवियोग के कष्टों की भी कुछ पर्वा न की।

सुलक्षणा का पति शुद्धभट्ट, विदेश से द्रव्योपार्जन करके अपने घर लौटा। घर लौटकर उसने सुलक्षणा से कहा, कि हे प्रिये, मैं जब यहाँ था तब तो तुम मेरा किंचित भी वियोग नहीं सह सकती थीं, फिर तुमने मेरे वियोग का इतना लम्बा समय कैसे निकाला? सुलक्षणा ने उत्तर दिया, प्राणनाथ, मैं आपके वियोग से उसी प्रकार व्याकुल थी, जिस प्रकार जल के वियोग से मछली व्याकुल रहती है, लेकिन एक साध्वीजी यहाँ पधारी थीं और उन्होंने अपने ही गृह में चातुर्मास विताया था। मैंने उनका उपदेश सुना। उनके दिये हुए धर्मोपदेश से मुझे बहुत शान्ति मिली और मैं आपके वियोग का दुःख धैर्य-पूर्वक सहन करने में समर्थ हो सकी। मैंने उनसे सम्यक्त्व सहित श्रावक के द्वादश व्रत भी स्वीकार किये। इनके आराधन में ही मैं इतना समय विताने में समर्थ हो सकी।

शुद्धभट्ट ने पत्नी की बात सुनकर कहा हे अनघे, सम्यक्त्व किसे कहते हैं और उससे क्या लाभ होते हैं? सुलक्षणा कहने लगी, हृदयेश्वर, सुदेव में देवबुद्धि, सद्गुरु में गुरुबुद्धि और शुद्धधर्म में ही धर्मबुद्धि, सम्यक्त्व के अंग हैं। कुदेव में देवबुद्धि, कुगुरु में गुरुबुद्धि और अधर्म में धर्मबुद्धि विपर्यय भाव होने से मिथ्यात्व कहलाता है। सर्वज्ञ, रागादि दोष रहित

त्रैलोक्य पूज्य और यथार्थ अर्थ के प्ररूपक अरिहन्त भगवान ही देव हैं। उनका ध्यान धरना, उनकी उपासना करना और उनकी शरण प्राप्त करना ही कल्याणकारक है। इसीप्रकार महाव्रतों के धारक, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले, निरन्तर सम भाव में प्रवर्तने वाले और कंचन कामिनी के त्यागी अनगार ही गुरु हैं। दुर्गति में पड़ने से बचावे, वही धर्म है। इस धर्म के दस भेद हैं।

सम्यक्त्व, सम, सम्वेग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता इन लक्षणों के सद्भाव से, और शंका कांक्षा, विचिकित्सा, परपाखण्ड प्रशंसा, और परपाखंड संस्तव (परिचय) इन दूषणों के अभाव से पहचाना जाता है। इसी का नाम सच्ची समकित है।

समकिती पुरुष की बुद्धि यथार्थ होती है। वह, जीवादि तत्वों को जानने लगता है, जिससे इस लोक में भी उसका जीवन शान्ति-पूर्वक बीतता है और परलोक भी आनन्द-दायक होता है।

अपनी पत्नी से सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके लाभ सुन कर, शुद्धभट्ट बहुत प्रसन्न हुआ। सुलक्षणा की ही तरह, उसने भी सम्यक्त्व स्वीकार किया। पतिपत्नी, शुद्ध रीति से श्रावक व्रत पालते हुए आनन्द से रहने लगे।

उस शालिग्राम ग्राम में सच्चे साधुओं के संसर्ग का अभाव था, इसलिए वहाँ के दूसरे लोग, शुद्धभट्ट एवं उसकी पत्नी के लिए अपवाद बोलने लगे। एक दिन शुद्धभट्ट अपने पुत्र को गोद में लिए, ब्राह्मणों की सभा में गया। सभा के ब्राह्मण, यज्ञवेदी के समीप बैठे हुए थे। वे लोग, शुद्धभट्ट से कहने लगे, कि तू श्रावक है, इसलिए यहाँ तेरा काम नहीं है, तू यहाँ से चला जा! ब्राह्मणों के कटुवचन सुन कर, शुद्धभट्ट बहुत खेद पाया। उसने, यह कहते हुए, कि 'जो जिनोक्त धर्म संसारसमुद्र से तारक न हो, तीर्थङ्कर प्रभु आप्त देव न हों, और संसार से सम्यक्त्व का प्रभाव लुप्त हो गया हो, तो यह मेरा पुत्र अग्नि में भस्म हो जाय और यदि मैंने सत्य धर्म एवं शुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण किया हो, तो अग्नि शान्त हो जाय!' अपने लड़के को अग्नि में फेंक दिया। उस समय, सन्निकट रही हुई समकित धारिणी देवी ने, बालक को ऊपर ही ऊपर ले लिया और अग्नि शान्त कर दी। समकित का यह प्रभाव देखकर, सभा के सब ब्राह्मण बहुत आश्चर्यान्वित हुए।

शुद्धभट्ट, अपने पुत्र को लेकर घर आया। उसने, अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कहा। उसकी स्त्री सुलक्षणा ने अपने पति से कहा-नाथ, आपने बड़ी भारी त्रुटि की थी। यदि उस समय वहाँ कोई सम्यक्त्व धारी देवी देव न होता, तो बड़ा अनर्थ

हो जाता। अग्नि में पुत्र के जल जाने पर, धर्म की निन्दा होती और जो सदा सर्वदा सत्य है, वह कलंकित होता। भविष्य में, आप ऐसा अविचार-पूर्ण कार्य कदापि न करें। सुलक्षणा के इस उपदेश से, शुद्धभट्ट धर्म में अधिक दृढ़ बना।

यह वर्णन करके भगवान अजितनाथ ने, गणधर सिंहसेन मुनि से कहा, कि इसी विषय में इस ब्राह्मण ने प्रश्न किया था। यह कह कर, भगवान वहाँ से विहार कर गये।

भगवान श्री अजितनाथ, केवली पर्याय में बारह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक विचरते और भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अजितनाथ भगवान के पच्चान्वे गणधर, एक लाख मुनि, तीन लाख तीसहजार साध्वी, दोलाख अठ्यान्वे हजार श्रावक और पाँच लाख पेंतालिस हजार श्राविकाएँ थीं। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान अजितनाथ, एक हजार मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान ने, 'पादोगमन' नाम का संथारा किया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में चैत्र शुक्ल ५ को–जब चन्द्र, मृगशर नक्षत्र में आया–भगवान ने, अयोगी अवस्था में प्राप्त हो, चार अघातिया कर्मक्षय किये और सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

भगवान अजितनाथ, अठारह लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे। एक सहस्र वर्ष अधिक त्रैपन लाख पूर्व तक राज्य

किया। बारह वर्ष छद्मावस्था में व्यतीत किये और
न्यून एक लाख पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस प्रका
अजितनाथ ने सब बहत्तर लाख पूर्व का आयुष्य प
आदिनाथ भगवान के निर्वाण को पचास लाख क्रोड़ स
जाने पर, भगवान श्री अजितनाथ का निर्वाण-कल्या

प्रश्न

१—भगवान अजितनाथ के माता-पिता और का
का नाम क्या था ?

२—भगवान अजितनाथ का पारणा किसके यहाँ

३—भगवान अजितनाथ, पूर्वभव में कौन थे और
से तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था ?

४—समकित का क्या महात्म्य है ?

भगवान् श्री संभवनाथ।

पूर्व-भव
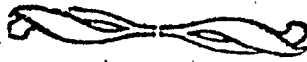
श्लोक—

या दुर्लभा भव भ्रताष्ट भुवह्म रीव।
मानाभित द्रुम हिमाभजितारि जात॥
श्री सम्भवेश! भवभिद भवतोऽस्तु सेशा।
ऽमानाभित द्रुमहिलाभ जितारिजातम्॥

जम्बू द्वीप के आगे लवण समुद्र है। लवण समुद्र के आगे वलयाकार धातकी खण्ड है। उस धातकी खण्ड द्वीप में क्षेमपुर नाम का एक नगर था। क्षेमपुर का राजा विपुलवाहन न्यायी, दयालु, प्रजा पालक और धर्मात्मा था। एक समय विपुलवाहन के राज्य में दुष्काल पड़ा। अधिकांश प्रजा, अन्न के अभाव से दुख पाने लगी और अन्न के लिए, इधर उधर भटकने लगी। राजा विपुलवाहन से, प्रजा का यह दुख न देखा गया। उसने अपने कर्मचारीयों से कहा, कि कोठार में अन्न भरा है और प्रजा अन्न के लिए कष्ट उठा रही है। यदि इस समय भी कोठार के अन्न का उपयोग न किया गया, तो फिर कोठार किस काम का। इसलिए कोठार का अन्न, क्षुधा पीड़ित प्रजा में बांट दो।

कोठार का अन्न भूखी प्रजा में बँटवाने के साथ ही, राजा विपुलवाहन ने, अपने पाकगृह में से, मुनियों को प्रचुर एवं प्रासुक आहार देने और श्रावकों को भोजन करवाने की भी आज्ञा दी। उसने केवल आज्ञा ही न दी, किन्तु वह मुनि आदि को अपने हाथ से भी आहार देने लगा। इस प्रकार वह दुष्काल भर अन्नदान और उत्कृष्ट भाव से चतुर्विध संघ की सेवा भक्ति करता रहा एवं प्रजा को शान्ति देता रहा। इस कार्य के द्वारा उसने, उत्कृष्ट पुण्य उपार्जन किया।

एक समय राजा विपुलवाहन, अपने महल की छत पर बैठे

थे। उन्होंने वहां वैठे वैठे यह देखा, कि मेघ की घटा, आकाश मण्डल को आच्छादित कर रही है, इतने ही में प्रतिकूल पवन से वह छिन्न भिन्न और थोड़ी ही देर में लुप्त प्रायः हो गई। मेघ घटा की दोनों दशा देखकर, महाराजा विपुलवाहन को वड़ा विचार हुआ। वे सोचने लगे, कि जिस प्रकार यह मेघ-घटा देखते ही देखते वढ़ी और विनष्ट हो गई, इसी प्रकार सांसारिक सम्पत्ति भी देखते-ही-देखते वढ़ती और विनष्ट हो जाती है। ऐसा होते हुए भी, मोह के वशीभूत बने हुए प्राणी, संसार के क्षणभंगुर पदार्थों को अविनाशी मानकर, उन्हें पकड़े रहने की चेष्टा करते हैं। उनकी इस चेष्टा के परिणाम स्वरूप उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। मुझे उचित है, कि मैं आयुष्यबल के विद्यमान, शरीर स्वस्थ और इन्द्रियों के शक्ति-सम्पन्न रहते ही आत्मा का कल्याण कर लूँ। अन्यथा अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ शेष न रहेगा।

इस प्रकार विचार कर राजा विपुलवाहन ने, राज-भार अपने पुत्र को सौंप दिया और आप, स्वयंप्रभ आचार्य के समीप, संयम में प्रवर्जित हो गया। संयम में प्रवर्जित होकर विपुल वाहन ने, अनेक प्रकार के तप परिषह तथा उपसर्गों को सहन और बीस बोल की आराधना करके, तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में, सातवीं ग्रैवेयक में २७ सागर की स्थिति वाले अहमिन्द्र देव हुए।

अन्तिम भव ।

इसी जम्बूद्वीप के भरतार्द्ध में, चतुर्थ आरे का एक पंचमांश काल शेष था तब, श्रावस्ती नाम की एक रमणीय नगरी थी, जो अपनी छटा में स्वर्ग की स्पर्धा करती थी। वहाँ जितारि नाम के महाभुज राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सैन्यादेवी था। सैन्या देवी, गुण रूप में अप्रतिम एवं पतिपरायणा थीं।

सातवीं ग्रैवेयक का आयुष्य समाप्त करके विपुलवाहन का जीव, फाल्गुन शुक्ल ८ की रात को-जब चन्द्र मृगशिर नक्षत्र के साथ था-महारानी सैन्यादेवी के गर्भ में आया। सैन्यादेवी उस समय अपनी मनोहर शय्या पर शयन किये थीं। निद्रावस्था में सैन्या देवी ने, तीर्थङ्कर के गर्भ कल्याण सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देख कर महारानी सैन्या देवी, जाग पड़ीं और स्वप्नों का स्मरण करके बहुत हर्षित हुईं। वे, शय्या से उठ कर, महाराजा जितारि के शयनागार में आईं और महाराजा जितारि को जगाकर, उन्हें अपने स्वप्न सुनाये सैन्यादेवी के स्वप्नों को सुनकर, महाराजा जितारि भी बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, सैन्यादेवी से, स्वप्नों का यह फल बताया, कि तुम्हारी कोंख से महा भाग्यशाली पुत्र होगा. स्वप्नों का फल सुनकर महारानी सैन्यादेवी, हर्ष सहित अपने शयन मन्दिर में लौट आईं।

महाराजा जितारि ने, प्रातःकाल स्वप्न-पण्डितों को बुला, उनसे सैन्यादेवी के देखे हुए स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने कहा, कि महारानी, त्रिलोक पूज्य पुत्र प्रसव करेंगी यह सुनकर महाराजा जितारि बहुत प्रसन्न हुए और पण्डितों को पारितोषिक देकर विदा किया।

महारानी सैन्यादेवी यत्न पूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं नौमास साडे सात रात बीतने पर, मार्ग शीर्ष शुक्ल १४ के दिन जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र में आया महारानी सैन्यादेवी ने कंचनवर्णी एक सहस्र आठ लक्षणों के धारक और अश्व के चिन्ह वाले पुत्र को जन्म दिया। छप्पन दिककुमारिका, चौंसठ इन्द्र और असंख्य देव-देवी ने सुमेरू गिरि पर भगवान का जन्मकल्याण मनाया। महाराजा जितारि ने भी, बड़ी धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव किया और पुत्र का नाम सम्भव कुमार रखा।

अनेक देवी-देव से सेवित भगवान सम्भवकुमार, द्वितीया के चन्द्र समान वृद्धि पाने लगे। भगवान, जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे, इसलिए इन्हें किसी से विद्या कला आदि सीखने की तो आवश्यकता ही न थी।

भगवान सम्भवकुमार, किशोरावस्था में प्राप्त हुए किशोरावस्था में उनका प्रमाणयुक्त चार सौ धनुष ऊँचा शरीर अपने रूप लावण्य से, स्वर्ण कान्ति को भी पराजित करता

था। भगवान सम्भवकुमार से महाराजा जितारि और महारानी सैन्या देवी ने कहा हे पुत्र, हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखने की इच्छा रखते हैं, हमें तुम्हारा विवाह करने की बड़ी उत्कण्ठा है, इसलिए तुम्हारा विवाह करने की अनुमति दो। भगवान, अपने ज्ञानातिशय से जानते थे,कि भोग-फल देनेवाले कर्म खपाना शेष हैं, इसलिए वे, माता-पिता की बात सुनकर मौन रहे। भगवान की अनुमति समझ, महाराजा जितारि ने अनेक समवयस्का और लावण्यवती युवतियों के साथ, संभव-कुमार का विवाह कर दिया। पत्नियों सहित सम्भव कुमार आनन्द से रहने लगे। लगभग १५ लाख पूर्व भगवान को कुमार पद में बीते होंगे उस समय, महाराजा जितारि को संसार से वैराग्य हो गया। वे, राजपाट सम्भव कुमार को सौंप कर संयम में प्रवर्जित हो गये और उनने आत्मकल्याण किया।

महाराजा सम्भवनाथ, न्यायपूर्वक राज्य करने और प्रजा को उन्नत एवं सुखसमृद्ध बनाने लगे। महाराजा सम्भवनाथ को जब इसी प्रकार राज्यावस्था में ४४ लाख पूर्व बीत चुके, तब वे, एकान्त स्थान पर बैठ विचार करने लगे। उन्हें विचार हुआ कि संसार के कार्य न तो कोई समाप्त कर ही सका है न कर ही सकता है, केवल प्रपंचों में ही फँसे रहना है। इस मनुष्य शरीर को सांसारिक प्रपंचों में ही लगाये रहना इसके

द्वारा परमार्थ न करना और अन्त में दुर्गति में पड़ना, बड़ी भारी मूर्खता है। इसलिए मुझे अब, आत्म कल्याण का मार्ग अपना कर, भव्य जीवों को धर्म मार्ग में लगाना चाहिए।

भगवान ने इस प्रकार का निश्चय किया, इतने ही में, ब्रह्म-लोक वासी सारस्वतादिक लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की हे प्रभो, अब धर्म तीर्थ प्रवर्ताइये। देवताओं की प्रार्थना और अपने निश्चय के अनुसार, भगवान ने, राजपाट अपने पुत्रों को सौंप दिया और आप वार्षिक-दान देने लगे।

भगवान, नित्य प्रति एक क्रोड़ आठ लाख सोनैये, सवा पहर दिन चढ़ने तक दान देते रहे। दान देते जब एक वर्ष समाप्त हो गया, तब इन्द्र तथा देवी देव भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। इनने, भगवान का दीक्षा दीक्षाभिषेक, भगवान को वस्त्रालंकार पहनाये। पश्चात भगवान को सिद्धार्थ नाम की पालकी में बैठाया। शिबिकारूढ़ भगवान, असंख्य देव और मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए, श्रावस्ती नगरी के मध्य होकर, सहस्राम्र वन में पधारे। सहस्राम्र वन में पधार कर भगवान शिबिका से उतर पड़े और सब वस्त्रालङ्कार भी त्याग दिये। फिर, बेला के तप में, मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के दिन जब चन्द्र मृगशिर नक्षत्र के साथ था अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके भगवान ने, सर्व सावद्य योग के त्याग रूप संयम स्वीकार किया।

दीक्षा लेते ही, भगवान् को मनः पर्यय ज्ञान हुआ। भगवान के साथ ही, एक सहस्र राज-परिवार के लोगों ने भी दीक्षा ली।

संयम में प्रवर्जित होकर भगवान,अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन, सुरेन्द्रदत्त राजा के यहाँ, भगवान का पवित्रान्न से पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

जगद्गुरु भगवान संभवनाथ, चौदह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में, निग्रन्थ धर्म का पालन करते हुए, अप्रमत्त रूप से अनेक ग्राम नगर में विचरते और भव्यजनों का कल्याण करते रहे। इतने समय में भगवान ने, मनोगुप्ति, तप, और ध्यान के द्वारा, कर्मों की निर्जरा कर दी। शुद्ध भावना बढ़ाकर, और अपूर्व करण करके भगवान, शुक्लध्यान ध्याने लगे। अन्त में कार्तिक कृष्ण ५ को–जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र में आया–क्षपक श्रेणी में पहुंचकर भगवान ने, चार घनघातिक कर्म नष्ट कर दिए और केवल ज्ञान प्राप्त किया।

भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है,यह जानकर इन्द्रादि देव केवल ज्ञान की महिमा करने के लिए उपस्थित हुए उन्होंने, समवशरण की रचना की,जिसमें बैठकर बारह प्रका की परिषद् ने, भगवान की भवनाशिनी वाणी सुनी। स दुःख भंजनी भगवान की वाणी से, अनेक प्राणियों को संसा

से विरक्ति हो गई और उन्होंने भगवान से संयम स्वीकार किया। बहुत से लोगों ने श्रावक व्रत और सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान संभवनाथ के, चारु आदि १०२ गणधर थे। दो लाख साधु थे। तीन लाख छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख त्रयान्वे हजार श्रावक थे। और छः लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

चार पूर्वांग और चौदह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक भगवान,केवली पर्याय में विचरते और दुःखी जीवों का उद्धार करते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान, एक हजार मुनियों सहित,सम्मेत शिखरपर पधार गये और वहाँ, पादोपगमन नाम का अनशन किया। चैत्र शुक्ल ५ के दिन, जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र के साथ था, भगवान एक मास के अनशन में, मन वचन और काय के योग को रूँधकर, शैलेशी अवस्था में प्राप्त हुए और चार अघातिक कर्मों को नष्ट कर सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान संभवनाथ, पन्द्रह लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे और चार पूर्वांग चवाँलिस लाख पूर्व, राज्य किया। चौदह वर्ष संयम लेकर छद्मस्थावस्था में रहे और चार पूर्वांग तथा चौदह वर्ष कम एक लक्ष पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस

प्रकार भगवान ने सब साठ लाख पूर्व का आयुष्य पाया भगवान अजितनाथ के निर्वाण को तीस लाख क्रोड़ साग व्यतीत हुए थे, तब भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्रा हुए।

भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए, यह जानकर इन्द्र तथा देवता, निर्वाणोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए और निर्वाणोत्सव करके नन्दीश्वर द्वीप में जा, अष्टान्हिका महोत्सव मना अपने-अपने स्थान को गये।

प्रश्न—

१—राजा विपुलवाहन ने किस कार्य द्वारा तीर्थंकर नाम गोत्र का सम्पादन किया था?

२—राजा विपुलवाहन को, कौन सी घटना देखकर वैराग्य हुआ था?

३—राजा विपुल वाहन, किस गति में, किस स्थान पर और कितनी स्थिति लेकर गये थे?

४—भगवान संभवनाथ के माता-पिता कौन थे और वे कहाँ रहते थे?

५—भगवान सम्भवनाथ की जन्मतिथि कौनसी है?

६—भगवान सम्भवनाथ, राज्यासन पर किस अवस्था में विराजे थे और किस अवस्था तक राज्य करते रहे?

७—भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब उनकी अवस्था कितनी थी और केवली पर्याय में कितने काल तक रहे ?

८—भगवान सम्भवनाथ द्वारा स्थापित चारों तीर्थ की भिन्न भिन्न संख्या क्या थी ? और गणधर की गणना किन में होगी ?

९—भगवान का निर्वाण किस तिथि को हुआ था ?

१०—भगवान ने निर्वाण के पूर्व कौन-सा अनशन किया था और वह कितने दिन चलता रहा ?
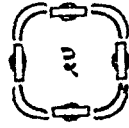
भगवान श्री अभिनन्दनजी

पूर्व-भव
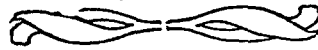
श्लोक—

निःशेष सत्व पारिपालन सत्य सन्धौ,
भूपाल संवर कुलाम्बर पद्मबन्धो ।
कूर्व्वन कृपा भवभिदे जिन मे विनम्र,
भूपाल संबर कुलाम्बर पंझर्बन्धौ ॥

इस जम्बूद्वीप के अन्तर्गत-जहाँ सदाकाल प्रारम्भिक चौथे आरे के भाव वर्तते हैं उस पूर्व महा विदेह में,मंगलावती नाम की विजय है। मंगलावती विजय में, रत्नसंचया नाम की अति रमणीय नगरी थी। वहाँ महाबल नाम का राजा राज्य करता था,जो न्याय नीति में निष्णात,अर्हन्त धर्म का उपासक और दान शील तप एवं भाव से धर्म का सेवक था।

कालान्तर में, महाबल राजा को संसार से वैराग्य हो गया। उसने, विमलसूरि नाम के आचार्य के पास दीक्षा ले ली और समिति गुप्ति सहित चारित्र की आराधना करने लगा। तप और अनेक परिषह को सहन करके, तथा तीर्थंकर नाम कर्म योग्य बीस बोल में से कितने ही बोल की उत्कृष्ट आराधना करके, महाबल ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया अन्त में संलेखणा संथारा करके शरीर त्याग, जयन्त नाम के विमान में, बत्तीस सागर की आयु वाला, महर्द्धिक देव हुवा।

अन्तिम भव।

तिर्छालोक के मध्य भाग में, असंख्य द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ, जम्बू द्वीप है। जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, अयोध्या नाम्नी नगरी थी,जिसे भगवान् ऋषभदेव के समय में देवताओं ने 'विनीता नगरी' नाम देकर बसाया था। बदलते बदलते

विनीता का नाम अयोध्या हो गया। अयोध्या में, संवर न
के इक्ष्वाकु वंशीय राजा, राज्य करते थे। संवर राजा
सिद्धार्थ नाम की सुखदायिनी रानी थी।

महाबल का जीव, जयन्त विमान का आयुष्य भोगक
वैशाख शुक्ला ४ की रात में, जब चन्द्र, अभिजित नक्षत्र
आया हुआ था—महारानी सिद्धार्था के उदर में आया। उ
समय महारानी सिद्धार्था, सुन्दर और स्वच्छ शय्या पर श
किये थीं। उन्होंने तीर्थंकर के जन्मसूचक चौदह महास्व
देखे। स्वप्नों को देखकर, वे जाग उठीं। स्वप्नों का स्म
करके वे बहुत हर्षित हुई और अपने पति के शयनागार
जा, पति को जगाकर, उन्हें सब स्वप्न सुनाये। महारा
संवर, स्वप्नों को सुनकर आनन्दित हुए। स्वप्नों पर विच
करके, उन्होंने, महारानी से कहा, कि स्वप्नों का विच
करते हुए तुम्हारे उदर से त्रिलोकपूज्य पुत्र होगा। उ
समय देवता तथा इन्द्र उपस्थित हुए और उन्होंने कहा,
महारानीजी के गर्भ से, चौथे तीर्थंकर पुत्र में उत्पन्न हों
यह सुनकर महारानी सिद्धार्था बहुत प्रसन्न हुई। वे,यत्नपूर्व
गर्भ का पोषण करने लगीं।

अपनी इच्छाओं को गर्भ की इच्छा जानकर, महारा
सिद्धार्था पूर्ण करती रहीं। इस प्रकार नौ मास साढे स
रात पूर्ण होने पर, माघ शुक्ल २ के दिन जब चन्द्र अभिजि

नक्षत्र में आया और दूसरे अनेक शुभ योग का संयोग हुआ तब-महारानी सिद्धार्था ने स्वर्ण वर्णी कपि के लांछनवाले त्रिलोक पूज्य पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही तीनों लोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी क्षण भर के लिए शान्ति मिली।

तीर्थंकर का जन्म हुआ जानकर, चौंसठ इन्द्र एवं असंख्य देवों ने उपस्थित होकर, सुमेरुगिरि पर भगवान का जन्म कल्याण मनाया। दिक कुमारियों ने भी, अपना सब प्रसूतिक कार्य किया। पश्चात् सब देव, नन्दीश्वर द्वीप में जाकर और अष्टान्हिका महोत्सव मना कर, अपने-अपने स्थान को गये।

महाराजा संवर ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, पुत्र का नाम अभिनन्दन कुमार रखा। परिजन दास दासी एवं देवीदेव से सेवित अभिनन्दनकुमार वृद्धि पाने लगे कुमारावस्था व्यतीत कर, भगवान अभिनन्दन, किशोरावस्था में प्राप्त हुए। उनका सर्वांग सुन्दर देदीप्यमान और कान्तियुक्त शरीर साढे तीनसौ धनुष ऊँचा था। महाराजा संवर ने अनेक राजकन्याओं का कुमार अभिनन्दन के साथ विवाह कर दिया। अभिनन्दन कुमार अपनी पत्नियों के साथ आनन्द से दिन व्यतीत करने लगे।

भगवान अभिनन्दन की अवस्था जब साढे बारह लाख

पूर्व की हो गई, उस समय महाराजा संवर को संसार से वैराग्य हो गया। उन्होंने, राजपाट अभिनन्दनकुमार को सौंप दिया और आप आत्म-कल्याण के लिए भव-वारिधि से पार करनेवाले संयम में प्रवर्जित हो गये।

भोग फल देनेवाले कर्मों की निर्जरा करने के लिए भगवान अभिनन्दन, न्यायनीतिपूर्वक राज्य करने लगे। इस प्रकार भगवान को साढे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग बीत गये। एक दिन भगवान ने यह विचार किया, कि अब मुझे संसार व्यवहार से निकल कर, मोक्षाभिलाषी जीवों को मार्ग दर्शानेवाले धर्म एवं तीर्थ की प्रवृत्ति करनी चाहिए। भगवान के यह विचारन के साथ ही,लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब भव्य जीवों के कल्याणार्थ तीर्थ प्रवर्ताइये। अपने विचार और देवताओं की प्रार्थना के अनुसार, स्वयंबुद्ध भगवान अभिनन्दन ने, वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिकदान समाप्त होने पर, इन्द्र और देवों ने उपस्थित होकर, भगवान का अभिषेक किया और भगवान को दिव्य वस्त्रालंकार धारण कराकर, अर्थसिद्धा शिबिका में आरूढ किया। वाद्य गीत एवं जयध्वनि के साथ भगवान, देव और मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए, अयोध्या के मध्य होकर, सहस्राम्र उद्यान में पधारे। सहस्राम्र उद्यान में,

पालकी से उतर कर भगवान ने, वस्त्राभूषण त्याग दिये और माघ शुक्ल १२ को दिन के अन्तिम भाग में जब अभीच नक्षत्र था—छट्ठ के तप में,एक सहस्त्र राज परिवार के लोगों के साथ, सर्व विरति चारित्र स्वीकार किया।

चारित्र स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान प्राप्त हुआ। तीनों लोक में उद्योत हुआ और क्षणभर के लिये नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। भगवान को वन्दना नमस्कार करके, सब देव मनुष्य अपने-अपने स्थान को गये।

दूसरे दिन,अयोध्या के ही राजा इन्द्रदत्त के यहाँ,भगवान का छट्टतप का पारणा हुआ। देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके, दान की महिमा बताई। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

भगवान ने, अठारह वर्ष तक अनेक तप अभिग्रह और मौनादि करके, अपने, कर्मों को निर्जर दिये। पश्चात्, विहार करते हुए भगवान, अयोध्या के उसी सहस्राम्र वन में पधारे। वहाँ, छट्टतप पूर्वक रायण (खिरनी) के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। क्षपकश्रेणी में चढ़कर भगवान ने मोह कर्म नष्ट किया। फिर शुक्लध्यान के द्वितीय चरण के अन्त में, सर्वघातिक कर्म क्षय करके भगवान ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया।

भगवान को केवलज्ञान होते ही, तीनों लोक में उद्योत

हुआ। चौंसठ इन्द्र और असंख्य देवी देव ने,भगवान की सेवा में उपस्थित होकर केवलज्ञान की महिमा की। वहीं पर, समवशरण की रचना हुई, और बारह प्रकार की परिषद एकत्रित हुई। भगवान अभिनन्दन ने, कल्याण कारिणी देशना दी,जिसे सुनकर बहुत लोग बोध पाये और भगवान के समीप संयम में प्रवर्जित हुए।

भगवान अभिनन्दन के एक सौ सोलह गणधर, तीन लाख मुनि, छः लाख तीस हजार आर्यिका, दो लाख अठयासी हजार श्रावक, और पांच लाख सत्ताइस हजार श्राविका थीं। वे, आठ पूर्वाङ्ग और अठारह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रहे,जिसमें अनेक भव्य प्राणियों को कल्याण मार्ग बताया। अपना निर्वाणकाल समीप जानकार,एक सहस्र मुनि सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां अनशन क्रिया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त समय में भगवान, सयोगी अवस्था त्याग, अयोगी अवस्था में प्राप्त हुए और चार अघातिक कर्म नष्ट करके, मोक्ष पधार गये।

भगवान अभिनन्दन, साढे बारह लाख पूर्व, कुमारावस्था में रहे। साढे छत्तीस लाख पूर्व तथा आठपूर्वाङ्ग राज्य किया। अठारह वर्ष तक संयम लेकर छद्मस्थावस्था में रहे ८ पूर्वांग और १८ वर्ष कम १ लाख पूर्व तक केवल पर्याय में रहे।

भगवान इस प्रकार अभिनन्दन ने सब पचास लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और भगवान सम्भवनाथ के निर्वाण को दस लाख क्रोड़ सागर व्यतीत होने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न

१—भगवान अभिनन्दननाथ पूर्व भव में कौन थे ? और क्या करके तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया ?

२—भगवान अभिनन्दन के माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान अभिनन्दन का जन्मस्थान कौनसा और जन्म तिथि कौनसी है ?

४ भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और किस-किस पद पर कितने-कितने काल तक रहे ?

५ भगवान अभिनन्दन के साधु साध्वी और श्रावक श्राविका कितनी थीं ?

भगवान श्री सुमतिनाथ।

पूर्व-भव
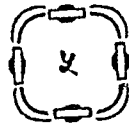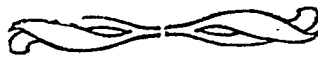
श्लोक—

भक्तिर्त्रजेन विहिता तप पाद पद्म,
सत्कामिता सुमन सां सुमते न तेन।
लब्धा सुखेन जिन सिद्धि समृद्धि वृद्धिः
सत्कामिता सुमनसां सुमतेन तेन॥

इसी जम्बू द्वीप में, पूर्व महाविदेह का मंडन रूप पुष्प कलावती विजय है। उस विजय में, शंखपुर नामका एक नगर था। शंखपुर में, विजयसेन नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था।

एक समय वसन्त ऋतु में, नगर के सब लोग, वन क्रीड़ा के अभिप्राय से उद्यान में गये। रानी सुदर्शना भी, हस्तिनी पर बैठकर, उद्यान में गई। वहाँ उन्होंने देखा, कि वस्त्राभूषण पहने हुई एक वृद्धा बैठी है और दिक्‌ कुमारियों की समानता करने वाली आठ रमणियाँ उस वृद्धा की सेवा कर रही हैं। पता लगाने पर रानी को मालूम हुआ, कि यह वृद्धा, यहाँ के प्रतिष्ठित सेठ की पत्नी है और ये सेवा करने वाली आठों युवतियाँ, इस वृद्धा की पुत्रवधू हैं। इस वृद्धा के दो पुत्र हैं, और प्रत्येक के चार-चार स्त्रियाँ हैं। वे ही, अपनी सास की सेवा आराध्य देवी के समान कर रही हैं।

वृद्धा और उसकी पुत्र वधू का इस प्रकार परिचय पाकर रानी विचारने लगीं—अहा ! इस वृद्धा को धन्य है, जो पुत्र एवं पुत्रवधुओं का सुख भोग रही है। मैं, राज-रानी हूं तो क्या पुत्रहीन होने के कारण हतभागिनी ही हूँ। इस प्रकार के विचारों से, रानी चिन्तित हुई और वनक्रीड़ा का विचार त्याग, वे अपने महल को लौट आईं। महल में आकर रानी

खान-पान और वस्त्रालङ्कार त्याग, रुग्ण की तरह शय्या पर पड़ रहीं। दासियों द्वारा रानी की उक्त दशा सुनकर, महाराजा विजय सेन, रनवास में आये। वे, रानी को देखकर कहने लगे—प्रिये, आज तुम इस प्रकार दुःखी एवं चिन्तित क्यों हो? राजा के अनेक वार पूछने पर रानी ने अपनी चिंता का कारण कह सुनाया। राजा ने कहा-देवी, यद्यपि तुम्हारी अभिलाषा अनुचित नहीं है, परन्तु पुत्र प्राप्त करना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। मैं तुम्हारी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए, कुलदेवी की आराधना करूँगा इसलिए तुम चिन्ता को त्यागो।

रानी को समझा बुझाकर और आश्वासन देकर, राजा, स्नान से निवृत्त हो कुल देवी के मन्दिर में आये। कुल देवी की पूजा करके राजा ने यह प्रतिज्ञा की, कि—हे देवी, जब तक मेरा मनोर्थ पूर्ण न होगा, मैं अन्नजल ग्रहण न करूँगा। यह प्रतिज्ञा करके राजा, देवी के सामने उसीका ध्यान करके बैठ गये। राजा को बिना अन्नजल ग्रहण किये, देवी का ध्यान धरे छः दिन बीत गये, तब राजा की कुलदेवी ने प्रकट होकर राज से कहा राजा, मैं तेरे से प्रसन्न हूं तू वरदान माँग। राजा ने देवी को नमस्कार करके प्रार्थना की कि हे माता, मैं पुरुषोत्तम पुत्र चाहता हूं। देवी ने उत्तर दिया-राजा, धैर्य रख तेरे यहां ऐसा ही पुत्र होगा।

राजा अपने घर आये। थोडे ही समय में रानी सुदर्शना उत्तम स्वप्न देखकर गर्भवती हुई। गर्भवती रानी की यह इच्छा हुई, कि मैं सब जीवों को अभय दान दूँ। रानी ने अपनी यह इच्छा राजा को सुनाई। राजा ने कहा—हे सद्भागिनी, यह उत्तम इच्छा इस बात की द्योतक है कि तुम्हारे गर्भ में पुण्यवान जीव है। यह कह कर राजा ने, अमरपड़ह द्वारा रानी की इच्छा पूर्ण की।

समय पाकर रानी ने, भाग्यशाली पुत्र प्रसव किया। राजा विजयसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाकर, बालक का पुरुषसिंह नाम रखा। पुरुषसिंह जब युवक हुआ तब राजा विजयसेन ने, देव कन्या सी आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। पुरुषसिंह, अपनी पत्नियों सहित आनन्द से रहने लगा।

एक समय पुरुषसिंह, मनोविनोद के लिए वन में गया। वहाँ उसे विजयानन्दसूरि नाम के महात्मा के दर्शन हो गये। कुमार पुरुषसिंह ने महात्मा का उपदेश श्रवण किया, जिससे उसे संसार से वैराग्य हो गया। माता पिता की आज्ञा लेकर*

---

* अनेक प्रयत्नों से प्राप्त पुत्र को दीक्षा के लिए आज्ञा दे देना यद्यपि माता-पिता के लिए एक कठिन सी बात है, लेकिन राजा विजयसेन और रानी सुदर्शना, धर्मज्ञ थे। उन्होंने पुत्र को समझाने में कसर न रखी परन्तु आज की तरह दण्ड नीति से काम लेकर, जबरदस्ती पुत्र को रखना, वे अनुचित समझते थे। इसलिए जब किसी तरह पुत्र को संसार में रहते न देखा, तब दीक्षा के लिए आज्ञा दे दी।

पुरुषसिंह ने दीक्षा लेली। बहुत काल तक संयम पालकर और बीसबोल में से कितने ही बोलों की आराधना से तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन कर, पुरुषसिंह, आत्मशुद्धि पूर्वक अनशन करके शरीर त्याग, जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र देव हुआ।

अन्तिम भव।

जिस समय, इस जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में चतुर्थ आरा वर्तता था—और चतुर्थ आरे का, केवल एक लाख क्रोड़ सागर काल शेष था—उस समय, आदेश्वर भगवान के लिए देवों द्वारा बसाई गई विनीता नगरी का नाम बदलते-बदलते कौशलपुरी हो गया था। उस समय, कौशलपुरी में, ईक्ष्वाकुवंशी राजा मेघरथ राज्य करते थे। मेघरथ के, मंगला नाम की पटरानी थी।

जयन्त विमान का आयुष्य बिता कर पुरुषसिंह का जीव, श्रावण शुक्ल २ की रात में—जब चन्द्र मघा नक्षत्र के साथ विद्यमान था—महारानी मंगला के गर्भ में आया। उस समय महारानी मंगला, सो रही थीं। उन्होंने, तीथङ्कर के गर्भ में आने की सूचना देनेवाले चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर, वे जाग उठीं और पति के पास जा, स्वप्न देखने का वृत्तान्त सुनाया। स्वप्नों को सुनकर महाराज मेघरथ ने कहा महारानी

जी, स्वप्नों के प्रभाव से, तुम्हारे गर्भ से जगत पूज्य पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर महारानी हर्षित होती हुई लौट गईं। वे, यत्नपूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगीं।

उन्हीं दिनों में, एक धनाढय व्यापारी अपनी समहवस्का दो पत्नियों सहित, व्यापार के लिए विदेश गया था। मार्ग में उसकी एक स्त्री के पुत्र हुआ। उस पुत्र को, दोनों स्त्रियों ने प्रेमपूर्वक पाला पोसा। कुछ दिनों बाद द्रव्योपार्जन करके सेठ अपनी पत्नियों एवं अपने पुत्र सहित स्वदेश के लिए लौटा। रास्ते में सेठ की मृत्यु हो गई। दोनों पत्नियों ने, व्यापारी के शव का अग्नि संस्कार किया और धन पुत्र लेकर कौशलपुरी की ओर चलीं। मार्ग में, जिस स्त्री ने पुत्र को नहीं जन्मा था उसने, धन और पुत्र की अधिकारिणी बनने के लिए, पुत्र को अपना बताकर झगड़ा किया। पुत्र को लिए हुए दोनों स्त्रियाँ, कौशलपुरी में आईं। कौशलपुरी में उन्होंने कुटुम्ब जाति और न्यायालय में फरियाद की, लेकिन दोनों ही स्त्रियों के प्रमाण समान थे, इसलिए कोई निर्णय न हो सका। अन्ततः दोनों का झगडा महाराजा मेघरथ के सामने आया। महाराजा मेघरथ ने भी झगडे पर बहुत विचार किया, फिर भी मध्यान्ह तक कोई निर्णय न दे सके। सभासदों ने मेघरथ से कहा, कि-महाराजा, यह झगडा न मालूम कब समाप्त हो,

इसके पीछे इस प्रकार भूखे कब तक रहेंगे? इसलिए आप पधार कर नित्यकृत्य करिये,इस झगड़े पर फिर विचार करेंगे।

सभासदों की प्रार्थना मान राजा मेघरथ, सभा विसर्जन करके अन्तःपुर में आये। महारानी ने उनसे देरी का कारण पूछा। राजा ने, दोनों स्त्रियों का झगडा रानी को सुनाकर कहा, कि इसी झगडे पर विचार करते रहने से देर हुई, फिर भी झगडे का फ़ैसला न हो सका। गर्भ-प्रभाव से निर्मल बुद्धिवाली रानी ने कहा–महाराज, स्त्रियों का न्याय तो स्त्री ही सरलतापूर्वक कर सकती हैं इस झगड़े के निर्णय का भार, आप मुझे सौंपिये राजा ने, रानी की बात स्वीकार करली।

दूसरे दिन राजा, महारानी को साथ लेकर राज-सभा में गये। वादिनी प्रतिवादिनी के मुँह से, राजा ने सारा वाद-विवाद रानी को सुनवाया रानी ने, इन दोनों स्त्रियों से कहा कि–'मेरे गर्भ में तीन ज्ञान के धारक तीर्थङ्कर हैं। वे जन्म लेकर, अशोक वृक्ष के नीचे बैठ तुम्हें न्याय देंगे। तब तक तुम लोग धैर्य रखो।' रानी की बात, वणिक पुत्र की अपर माता ने तो स्वीकार करली, लेकिन जन्म देने वाली माता ने स्वीकार नहीं की। उसने रानी से कहा, कि मैं तो थोडे भी समय तक धैर्य नहीं रख सकती, न अपने इस पुत्र को, इसे सौंप ही सकती हूं। आप तीर्थङ्कर की माता हैं, इसलिए कृपया आज ही न्याय दे दीजिये। यह सुनकर, रानी ने अपनी

वुद्धि से जान लिया कि वास्तव में पुत्र इसी का है, वह दूसरी तो विमाता है, उसका पुत्र नहीं है। रानी ने, तत्क्षण जिसका पुत्र उसे दिलवा दिया और इस प्रकार झगडे का फैसला कर दिया। रानी का न्याय देखकर सभा के लोग दंग रह गये, और रानी, तथा गर्भस्थ वालक की प्रशंसा करने लगे।

नव मास समाप्त होने पर, महारानी मंगला ने, वैशाख शुक्ल ८ को—जब चन्द्र, मघा नक्षत्र में आया—क्रौंच पक्षी के चिन्ह वाले स्वर्ण वर्णी पुत्र को जन्म दिया। चौसठ इन्द्र और असंख्य देवी-देव ने, भगवान का जन्मकल्याण मनाया। महाराजा मेघरथ ने, पुत्र जन्मोत्सव करके, पुत्र का नाम गर्भवती रानी की वुद्धि निर्मल हो गई थी, इस बात को दृष्टि में रखकर सुमतिकुमार रखा।

भगवान, सुखपूर्वक बढ़ने लगे। थोडे ही दिनों में वे, तीन सौ धनुष ऊँचे, पुष्ट शरीर वाले युवक हुए। भोग फल खपाने के लिए, माता-पिता, के आग्रह से भगवान ने, अनेक सुन्दर राज कन्याओं के साथ अपना विवाह किया और सुख पूर्वक रहने लगे। इस प्रकार भगवान को दस लाख पूर्व व्यतीत हुए, पश्चात्, पिता के बहुत आग्रह करने पर भगवान ने, राज भार ग्रहण किया। बारह पूर्वाङ्ग और उन्तीस लाख पूर्व तक भगवान राज्य करते रहे।

भोग फल कर्म को खपे जान स्वयंबुद्ध भगवान ने, राजपाट त्याग दिया और चारित्र स्वीकार करने के लिए वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर वैशाख शुक्ल ६ के दिन, भगवान अभयंकरा शिविका में आरूढ हो, दीक्षा लेने के लिए उद्यान में पधार गये और विधि पूर्वक एक सहस्त्र राज परिवार के मनुष्यों सहित दीक्षा लेली। दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, कोशलपुरी से विहार कर गये। वे, बीस वर्ष तक छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। ध्यानादि कृत्य द्वारा कर्म खपा कर भगवान, कौशलपुरी के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां प्रियंगु वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके भगवान ने, क्षपक श्रेणी द्वारा घातिक कर्म नष्ट किये और चैत्र शुक्ल ११ को जब चन्द्र मघा नक्षत्र में आया अनन्त केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त की।

भगवान को केवलज्ञान हुआ, यह जानकर इन्द्र तथा देवता केवलज्ञान की महिमा करने को उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान सुमतिनाथ की चौंतीस अतिशय युक्त वाणी श्रवण की। भगवान की वाणी सुनकर, बहुत से लोग बोध पाये।

भगवान सुमतिनाथ के एक सौ गणधर, तीन लाख बीस हजार साधु, काश्यपी आदि पांच लाख तीस हजार आर्यिका, दो लाख इक्यासी हजार श्रावक और पांच लाख सोलह हजार श्राविका थीं। वे बीस वर्ष और बारह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व तक, केवली पर्याय में विचरते रहे और असंख्य प्राणियों को धर्म का मार्ग बताते रहे।

अपना निर्वाणकाल समीप जान, एक हजार मुनियों सहित भगवान, सम्मेतशिखर पर पधार गये। सम्मेतशिखर पर, भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में शैलेशी अवस्था प्राप्त करके चैत्र शुक्ल ६ के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में, भगवान सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान सुमतिनाथ, दसलाख पूर्व तक कुमार पद पर रहे। उन्नीस लाख पूर्व से कुछ अधिक काल तक राज्य किया। बीस वर्ष तक छद्मस्थ रहकर संयम पालते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान ने सब चालीस लाख पूर्व का आयुष्य पाया। श्री अभिनन्दन स्वामी के निर्वाण को नव लाख क्रोड़ सागर बीत जाने पर, भगवान सुमतिनाथ सिद्ध गति में प्राप्त हुये।

प्रश्नः—

१—भगवान सुमति नाथ के माता पिता कौन थे ?

२—भगवान सुमतिनाथ,पूर्व भव में कौन थे और कौनसा कार्य करने से तीर्थङ्कर हुए ?

पूर्व भव संक्षिप्त चरित्र क्या है ?

३—भगवान सुमतिनाथ का नाम, 'सुमति कुमार' किस कारण दिया गया था ?

४ –भगवान सुमतिनाथ की जन्म तिथि और निर्वाण तिथि कौनसी है ?

५ –भगवान ने अपनी आयु किस किस कार्य में बिताई ?

६—भगवान सुमतिनाथ के पूर्व भव की उत्पत्ति का कारण बताओ ?

भगवान श्री पद्मप्रभु ।

पूर्व-भव

श्लोक—
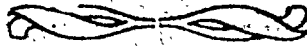
भव्याब्जि वारिज विबोध रविर्नवीन
पद्म प्रभेश करणोर्जित मुक्तिकान्तः ।
त्वं हि निर्वृति सुखं तपसा विभज्जन्
पद्म प्रभेश करणोर्जित मुक्तिकान्तः ॥

इस जम्बू द्वीप के चारों तरफ लवण समुद्र है। उसके आगे, चार लाख योजन के घेरे वाला धातकीखण्ड नाम का वलयाकार द्वीप है। उसके पूर्व विभाग में,महाविदेह क्षेत्र की। मण्डन रूप वत्स विजय है। उस विजय का सुशीला नाम्नी नगरी में, शत्रुओं से पराजित न हो सकने वाला अपराजित नामका राजा रहता था। वह अपराजित, न्याय और नीति-पूर्वक, सुशीला नगरी की प्रजा का पालन करता था।

एक बार अपराजित राजा ने, अर्हन्त प्रवचन के प्ररूपक श्री पिहिताश्रव आचार्य से धर्म देसना सुनी। आचार्य का उपदेश सुनकर, वह विचारने लगा, कि संसारासक्त प्राणी, धन सम्पत्ति और स्त्री-पुत्र आदि का त्यागना कठिन मानते है, लेकिन अशुभ कर्मों के उदय से, कभी-कभी वे ही प्राणी दुर्दशा को प्राप्त हो जाते हैं अथवा आयुष्य समाप्त हो जाने से परलोक के पथिक बन जाते हैं और इन दोनों ही दशा में, यह सांसारिक भोग-सामग्री छुट जाती है। अन्त में उन प्राणियों के हाथ पश्चाताप और दुःख के सिवा कुछ शेष नहीं रहता। इससे तो अच्छा यही है,कि स्वेच्छा से इन्हें त्याग दे,जिसमें इन के वियोग का भी दुःख न हो और परलोक में पश्चाताप भी न करना पड़े।

इस प्रकार विचारों से, अपराजित राजा को संसार से विरक्ति हो गई। उसने राज-पाट त्यागकर, सर्व विरति

चारित्र स्वीकार कर लिया। चारित्र एवं सुमति गुप्ति का पालन और बीस बोल में से कितने ही बोलों की उत्कृष्ट भावों से आराधना करके, अपराजित ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में, आराधिक पद के अधिकारी बन, नववीं ग्रैवेयक में, इकतीस सागरोपम की स्थितिवाले अहमिन्द्र देव हुए।

अंतिम भव

अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का अधिकांश भाग बीत चुका था—केवल एक लाख हजार सागरोपम काल शेष था, तब की बात है। इसी जम्बू द्वीप के मध्य के दक्षिण विभाग में भरत क्षेत्र के अन्दर, कौशम्बी नामकी एक नगरी थी। कौशम्बी में, श्रीधर नाम का बलवान राजा राज्य करता था। श्रीधर राजा की रानी, देवकन्या जैसी सुन्दरी, शीलादि गुणों से विभूषित और पतिपरायण थी। उसका नाम सुसीमा था।

नववीं ग्रैवेयक का आयुष्य भोगकर, अपराजित राजा का जीव, माघ कृष्णा ६ की रात को—जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में था—महारानी सुसीमा के गर्भ में आया। सोई हुई महारानी सुसीमा, तीर्थङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग

उठीं। पति द्वारा स्वप्नों का फल सुनकर महारानी सुसीमा को बहुत हर्ष हुआ। वह सावधानी पूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगीं।

गर्भवती महारानी सुसीमा को एक दिन पद्म-शय्या पर शयन करने की इच्छा हुई। देवताओं ने महारानी की यह इच्छा पूर्ण की।

नवमास समाप्त होने पर, कार्तिक कृष्ण १२ को जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया—महारानी सुसीमा ने, पद्म के रंग और निकलते हुए सूर्य की ललिमा को लज्जित करनेवाले टेसू के फूल एवं लाल माणिक वर्णी, पद्म के लक्षण से युक्त, तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म हुआ जान, दिक्कुमारियाँ प्रसूतिगृह में आईं और इन्द्र तथा देवों ने, सुमेरु पर्वत की शिखास्थित पंडगवन की शिला पर जाकर, भगवान का जन्म-कल्याण मनाया। पश्चात् भगवान की पूजा प्रार्थना करके अपने-अपने स्थान को गये। श्रीधर राजा ने भी पुत्र जन्मोत्सव मनाया और बालक का नाम पद्मकुमार रखा।

अनेक धात्रियों एवं देव देवियों से सेवित पद्मकुमार, युवावस्था को प्राप्त हुए। उनका ढाई सौ धनुष ऊँचा शरीर, लम्बी भुजाएँ, विशाल वक्षस्थल, उर्ध्वस्कन्ध और पद्म सा रंग, बहुत शोभायमान लगने लगा। पुण्य प्रकृति को क्षय करने के लिए पद्मकुमार ने, माता के आग्रह से, अनेक राज्यकन्याओं का

पाणि ग्रहण किया और सुखपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार कुमारावस्था में, साढे सातलाख पूर्वव्यतीत हो गये।

साढे सात लाख पूर्व की आयु होने पर महाराजा श्रीधर के अधिक आग्रह करने से, भगवान पद्मप्रभू ने राज-भार स्वीकार किया। राज्यासन पर आरूढ होकर,भगवान ने साढे इक्कीस लाख पूर्व तथा सोलह पूर्वांग तक राज्य-शासन किया। एक दिन उन्होंने धर्म तीर्थ प्रवर्ताने का विचार किया, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने भी आकर, यही प्रार्थना की। भगवान तो स्वयं बुद्ध ही थे। उन्होंने, तत्काल राजपाट त्याग दिया और जम्भृक देवताओं द्वारा लाये हुए द्रव्य को दान करना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिक दान करना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिक दान समाप्त होने पर,भगवान देवों तथा मनुष्यों द्वारा सजाई हुई सुखकारिणी पालकी में विराजे। इन्द्र, देवताओं एवं मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए पालकी रूढ भगवान,कौशम्बी के मध्य होकर सहस्राम्र बाग में पधारे। पालकी से उतर कर, भगवान ने सब वस्त्रालंकार त्याग दिये और कार्तिक कृष्ण १३ को जब चित्रा नक्षत्र था छट्ठ (बेले) की तपस्या में, एक सहस्र राजपरिवार के पुरुषों सहित, सर्व सावद्य योग त्याग रूप संयम को अपना लिया। उसी समय भगवान को, मनः पर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, कौशम्बी से विहार कर गये। दूसरे दिन ब्रह्मस्थल नगर में सोमदेव राजा के यहां भगवान का पारणा हुआ। दान की महिमा बताने के लिए, देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये और दान की महिमा गाई।

अनेक प्रकार के तप और ध्यान मौनादि में तल्लीन विचरते हुए, भगवान, कौशम्बी के उसी सहस्राम्रवन में पधारे। छट्ट के तप से, भगवान वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके खडे हुए और घनघातिक कर्म क्षय करके, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को, चित्रा नक्षत्र में, भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया।

आसनकम्प से भगवान को केवलज्ञान हुआ जान, चौंसठ इन्द्र तथा असंख्य देवों ने आकर, केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बारह प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान ने, कल्याणकारी उपदेश दिया, जिसे सुनकर अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पाये।

पद्मप्रभु के सुव्रत आदि एक सौ सात गणधर थे। तीन लाख तीस हजार साधु थे। चार लाख बीस हजार साध्वी थीं। दो लाख छहत्तर हजार श्रावक थे और पांच लाख पांच हजार श्राविका थीं। सोलह पूर्वांग कम लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया।

अपना निर्वाण काल समीप जान, भगवान पद्मप्रभु तीन सौ आठ मुनियों सहित संमेत शिखर पर पधार गये। वहाँ

एक मास का अनशन करके, शुद्ध ध्यान द्वारा अघातिक कर्मों को नष्ट किया और मार्गशीर्ष कृष्ण ११ के दिन निर्वाण पधारे।

भगवान ने, साढे सात लाख पूर्व कुमारावस्था में विताये। साढे इक्कीस लाख पूर्व और सोलह पूर्वांग राज्य किया। छः मास संयम लेने के पश्चात्—छद्मस्थावस्था में रहे और शेष आयु केवली पर्याय में रह कर विताई। इस प्रकार भगवान पद्मप्रभू ने, तीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और सुमतिनाथ भगवान के निर्माण को नव्वे सहस्र सागरोपम बीतने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—पद्मप्रभु पूर्वभव में कौन थे और पूर्व भव का संक्षिप्त चरित्र क्या है?

२—माता के गर्भ में, प्रभू का जीव कहां से आया?

३—पद्मप्रभू के माता पिता और जन्मस्थान का नाम क्या था?

४—भगवान की जन्म तिथि और निर्वाण तिथी कौनसी है?

५—भगवान का नाम पद्मप्रभू क्यों पड़ा?

६—भगवान पद्मप्रभू की शारीरिक रचना कैसी थी?

७—भगवान के साधु साध्वी और [illegible]
भिन्न भिन्न संख्या बताओ?

८—भगवान आदिनाथ के निर्वाण के कितने काल पश्चात् भगवान पद्मप्रभू निर्वाण पधारे ?

भगवान श्री सुपार्श्वनाथ।

पूर्व-भव
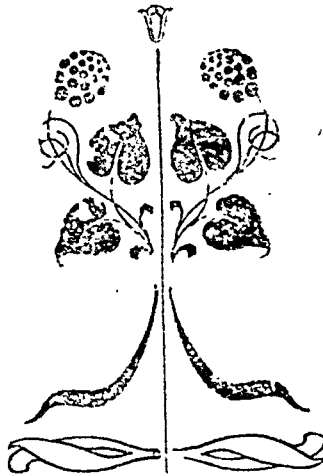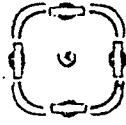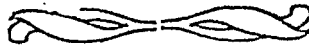
श्लोक—

यं प्रास्तवीदति शयानऽमृताशनानां
कान्ता रता रस पदं परमानऽवन्तम् ।
विज्ञः श्रियं भजनि कां न नतः सुपार्श्वं
कान्ता रता रस पदं परमानवन्तम् ॥

धातकी खण्ड के पूर्व महा-विदेह की रमणीय विजय में, क्षेमपुर नामक एक नगर था, जहाँ नन्दिषेण राजा राज्य करता था। राज काज करते हुए भी, उसे धर्म बहुत प्रिय था। वह आश्रितों का दुःख मिटाने के लिए सदैव तत्पर रहा करता था

कुछ काल पश्चात् नन्दिषेण राजा को संसार से वैराग्य हो गया। उसने अरिदमन आचार्य के पास से दीक्षा ले ली। उग्र तप तथा क्रियानुष्ठान द्वारा नन्दिषेण ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में आराधिक पद को प्राप्त कर, अनशन द्वारा शरीर त्याग, छट्ठी ग्रैवेयक में अट्ठाइस सागर की स्थितिवाला उत्कृष्ट देव हुआ।
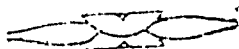
अंन्तिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध क्षेत्रान्तर्गत काशी देश में, वाणारसी नामकी एक स्वर्गपुरी सी नगरीथी वहाँ, प्रतिष्ठसेन राजा राज्य करता था। प्रतिष्ठसेन की रानी का नाम पृथ्वी था, जो पृथ्वी की ही तरह सुखदायिनी थी।

छट्ठी ग्रैवेयक का आयुष्य पूर्ण करके, नन्दिषेण का जी[illegible] भाद्रपद कृष्णा ८ की रात के अन्तिम भाग में, महारानी पृथ्[illegible] के उदर में आया। महारानी पृथ्वी, उस समय सो रही थी

उन्हों ने, गज वृषभादि तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों का फल सुनकर महारानी पृथ्वी बहुत आनन्दित हुई और गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ शुक्ल १२ को-जब चन्द्र विशाखा नक्षत्र के साथ था-महारानी पृथ्वी ने, स्वस्तिक के चिन्ह वाले स्वर्ण वर्णी अनुपम पुत्र को जन्म दिया। तत्काल दिक्कुमारियां उपस्थित हुई और इन्द्र तथा देवों ने,सुमेरुगिरि पर जाकर जन्मकल्याण-महोत्सव किया।

प्रतिष्ठसेन राजा ने, पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का श्री सुपार्श्वकुमार नाम रखा। अनेक दास दासी से सेवित भगवान, युवावस्था को प्राप्त हुए। उनका दो सौ धनुष ऊँचा और सब लक्षण व्यंजन युक्त सर्वाङ्ग पूर्ण शरीर बहुत शोभायमान दीखने लगा। माता पिता ने,आग्रह-पूर्वक सुपार्श्वकुमार का अनेक राज कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। अपनी पत्नियों के साथ सुपार्श्वकुमार, आनन्द से रहने लगे।

पांच लाख पूर्व की आयु होने पर, भगवान सुपार्श्व ने, पिता का दिया हुआ राज्य संभाला। वे, चौदह लाख पूर्व से कुछ अधिक काल तक राज्य करते रहे। भगवान सुपार्श्व को जब संसार से वैराग्य हुआ, तब लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर,धर्म और तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। भगवान सुपार्श्व

ने तत्काल ही राजपाट छोड़कर वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया। वे प्रतिदिन एक क्रोड आठ लाख सोनैया दान में देने लगे। वर्ष समाप्त होने पर, इन्द्र तथा असंख्य देव, दीक्षा-कल्याण बनाने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने, भगवान को अभिषेक सहित वस्त्राभूषण से अलंकृत करके, मनोहरा नाम की शिविका में बैठाया। शिविकारूढ भगवान,वाणारसीनगरी के मध्य होकर, सहस्राम्र बाग में पधारे। बाग में पहुँच कर भगवान, शिविका से उतर पडे और शरीर पर के वस्त्रालंकार त्याग, ज्येष्ठ शुक्ल १३ को, दिन के पिछले भाग में एक सहस्र राजाओं सहित संयम में प्रवर्जित हो गये। तत्क्षण भगवान को मनः पर्यय ज्ञान हुआ और क्षणभर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति हुई।

दूसरे दिन पाटलीखण्ड नगर में, भगवान का वेले का पारणा हुआ। देवों ने,पाँच दिव्य प्रकट करके,दान की महिमा की। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

अनेक परिषह सहन करते हुए और शरीर की ओर से भी निरपेक्ष रहते हुए, भगवान, नव मास तक छद्मस्थावस्था में विचरे। अन्त में, शिरीश वृक्ष के नीचे, प्रतिमा धारण किये हुए भगवान ने,घन घातिक कर्म क्षय कर दिये और फाल्गुण कृष्ण ६ को निरावरण एवं बाधारहित केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्र

एवं देवताओंने आकर केवल ज्ञानकी महिमा की। समव शरण की रचना हुई। भगवान ने,बारह प्रकार की परिषद् को धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर अनेक भव्य प्राणी वोध पाये।

भगवान सुपार्श्व प्रभुके विदर्भ आदि पच्यान्वे गणधर थे। तीन लाख मुनि थे। चार लाख तीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख सत्तावन हजार श्रावक थे और चार लाख त्रयान्वे हजार श्राविकाएँ थीं।

एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने असंख्य जीवों का उद्धार किया। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, पांच सौ मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां, एक मास का अनशन करके भगवान, अघातिक कर्म क्षय कर, शाश्वत गति को प्राप्त हुए।

भगवान सुपार्श्व नाथ,पाँच लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे। चौदह लाख पूर्व और वीस पूर्वांग राज्य किया। नव मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष काल केवली पर्याय में रहे इस प्रकार भगवान सुपार्श्व नाथ ने सव वीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और पद्मप्रभु के निर्वाण के नव सहस्र सागरोपम पश्चात निर्वाण पधारे।

प्रश्न:—

१—भगवान सुपार्श्वनाथ पूर्वकाल में कौन थे? पूर्वभव का संक्षिप्त परिचय क्या है? क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधा?

२—भगवान के माता-पिता का क्या नाम था और वे कहाँ रहते थे?

३—भगवान ने अपनी कितनी-कितनी आयु किस-किस कार्य में विताई?

४—भगवान का पारणा किस नगर में हुआ था?

५—भगवानके चतुर्विध तीर्थकी भिन्न-भिन्न संख्या वताओ?

६—सुपार्श्वनाथ भगवान की जन्म तिथि और निर्वाण तिथि कौन-सी है?

७—भगवान का निर्वाण कहां हुआ था?

८—भगवान सुमतिनाथ के निर्वाण के कितने काल पश्चात भगवान सुपार्श्व का निर्वाण हुआ?
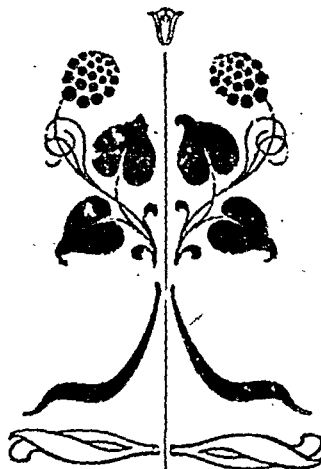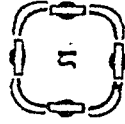
भगवान श्री चन्द्रप्रभु ।

पूर्व-भव
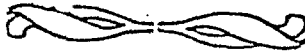
श्लोक—

पूज्यार्चितश्चतुर चित्त चकोर चक्र
चन्द्र प्रभाव भवनंदित मोहसारः ।
संसार सागर जले पुरुषं पतन्तं
चन्द्र प्रभाऽव भवनंदित मोह तारः ॥

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह की मंगलावती विजय में, रत्नसंचया नामकी नगरी थी। वहाँ उग्र-पराक्रमधारी, पद्म नामका राजा राज्य करता था। पद्म राजा, सांसारिक सुख भोगने के साथ ही, धर्म-सेवा में भी तत्पर रहता था और तत्त्ववेत्ता भी था।

युगन्धर मुनि के उपदेश से, पद्म राजा को संसार से विरक्ति हो गई। उसने संयम ले लिया और जप-तप, ध्यान, मौन अभिग्रह आदि द्वारा, संयम की आराधना करने लगा। तीर्थङ्कर नाम कर्म योग्य बीस बोलों में से भी कई बोल की उत्कृष्ठ आराधना करके, महान् दुर्लभ ऐसे तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। दीर्घकाल तक चारित्र पालकर, समाधि-पूर्वक शरीर त्याग, विजयन्त विमान में, बत्तीस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देव हुआ।
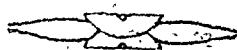
अन्तिम भव।

इसी जम्बू-द्वीप के भरत क्षेत्र के मध्य खण्ड में, चन्द्रानन (चन्द्रपुरी) नाम की रमणीय नगरी थी। वहां पर, महासेन नामका राजा राज्य करता था। महासेन की रानी का नाम, लक्ष्मणा था, जो बहुत रूपवती थी।

विजयन्त विमान का आयुष्य भोग कर, पद्मराजा का जीव, चैत्र कृष्ण ५ की रात को—जब चन्द्र, अनुराधा नक्षत्र में था—महारानी लक्ष्मणा के गर्भ में आया। महारानी लक्ष्मणा, अपनी शय्या पर सोई हुई थीं। तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखकर महारानी लक्ष्मणा जाग उठीं। उन्होंने अपने देखे हुए स्वप्न, महाराजा महासेन को सुनाये। महाराजा महासेन ने स्वप्नों का विचार करके कहा, कि तुम्हारे गर्भ से, त्रिलोक पूज्य उत्कृष्ट पुत्र जन्म लेगा। महारानी लक्ष्मणा, यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। वे, यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर पौष कृष्ण १२ के रोज, जब सब ग्रह नक्षत्र उच्चस्थान में थे, महारानी लक्ष्मणा ने, मोती की प्रभा और चाँदी की कान्ति को लज्जित करनेवाले, चन्द्र की कान्ति से भी उज्ज्वल, चन्द्र के लक्षणयुक्त श्वेतवर्णी पुत्र को जन्म दिया। तीनों लोक में प्रकाश हो गया और क्षणभर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। आसनकम्पादि से, तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान, दिक्कुमारियां, इन्द्र और देवगण उपस्थित हुए तथा भगवान का जन्मकल्याणोत्सव मनाकर, अपने-अपने स्थान को गये।

दूसरे दिन महाराजा महासेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाया। गर्भवती लक्ष्मणा को चन्द्रपान करने की इच्छा हुई थी, तथा

बालक की कान्ति चन्द्र से भी अधिक है, इन बातों को दृष्टि में रख कर, बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया। अनेक धाइयों के संरक्षण में, चन्द्रप्रभ का पालन पोषण होने लगा।

बाल अवस्था का उल्लंघन करके चन्द्रप्रभु, युवाअवस्था में प्रविष्ट हुए। युवावस्था में, उनका डेढ़ सौ धनुष ऊँचा शरीर, रजत-गिरि के समान शोभा देने लगा। माता-पिता के आग्रह से, अपने भोगफल वाले कर्म शेष जान चन्द्रप्रभ ने अनेक राज-कन्याओं का पाणिग्रहण किया। पत्नियों के साथ भगवान, आनन्द से रहने लगे।

जब चन्द्रप्रभु ढाई लाख पूर्व की अवस्था के हुए, तब महाराजा महासेन ने, राजपाट चन्द्रप्रभ को सौंप दिया और स्वयं आत्मकल्याण के लिए संयम में प्रवर्जित हो गये। भगवान चंद्रप्रभ, साढे छः लाख पूर्व और चौवीस पूर्व तक आसक्ति रहित राज्य करते रहे। इतने काल तक राज्य करने के पश्चात् भगवान ने विचार किया, कि अब मेरे भोग-फल कर्म शेष नहीं हैं, इसलिए मुझे धर्म तीर्थ प्रवर्त्ताना चाहिए। इतने ही में, लोकांतिक देवों ने उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, अब चार तीर्थ की प्रवृत्ति करने का समय आ गया है। चन्द्र-प्रभ ने, उसी समय राज-पाट अपने पुत्रों को सौंप दिया और आप वार्षिकदान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र तथा

देवता, निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए। चन्द्रप्रभु, मनोरमा शिविका में विराज कर, चन्द्रानना नगरी के मध्य हो सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ, भगवान ने वस्त्रालंकार त्याग, एक सहस्र राजाओं सहित, पौष कृष्णा १२ के दिन मध्यान्ह के पश्चात् छट्ठ के तप में, संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

संयम लेकर भगवान,चन्द्रानना नगरी के उद्यान से विहार कर गये। दूसरे दिन,पद्मखण्ड नगर के सोमदत्त राजा के यहाँ भगवान का पारणा हुआ। देवताओं ने पाँच दिव्य प्रकट कर के दान की महिमा की।

चारित्र की पूर्णतया आराधना एवं कर्मों की निर्जरा करते हुए भगवान चन्द्रप्रभु, तीन महीने तक छद्मस्थ अवस्था में विचरे। विचरते हुए, भगवान्, चन्द्रानना नगरी के उसी सहस्राम्र बाग में पधारे। भगवान ने, वहाँ पुन्नागवृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके चार घनघातिक कर्म क्षय कर दिये और फाल्गुण कृष्णा ७ को जब चन्द्र अनुराधा नक्षत्र में आया केवल-ज्ञान एवं केवल दर्शन प्राप्त किया।

भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है,यह जानकर, चौंसठ इन्द्र और असंख्य देवों ने आकर केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद को

भगवान ने धर्मोपदेश दिया। भगवान का दिया हुआ धर्मोपदेश सुन कर, अनेक भव्य प्राणी बोध पाये।

भगवान के दत्त आदि त्रयान्वे गणधर थे। ढाई लाख मुनि थे। तीन लाख अस्सी हजार साध्वियां थीं। ढाई लाख श्रावक थे और चार लाख इक्यान्वे हज़ार श्राविकाएँ थीं।

भगवान ने, चौवीस पूर्वाङ्ग और तीन मांह कम एक लाख पूर्व केवली पर्याय में रह कर, अनेक जीवों का उद्धार किया। अन्त में अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, भगवान, एक सहस्र मुनियों सहित, सम्मेत शिखर पर पधारे। सम्मेत शिखर पर अनशन करके, तीव्रध्यान द्वारा भगवान ने, चार अघातिक कर्म क्षय कर दिये और भाद्रपद कृष्ण ७ को सिद्ध गति में प्राप्त हुए।

भगवान चन्द्रप्रभ ढाई लाख पूर्व तक कुमार पद पर रहे। साढे छः लाख पूर्व, और चौवीस पूर्व राज्य किया। तीन महीने छद्मस्थ अवस्था में विचरे। और चौबीस कम एक लाख पूर्व, केवल पर्याय में रह कर, सुपार्श्वनाथ स्वामी के निर्वाण के नव सौ कोड़ी सागरोपम पश्चात् निर्वाण पधारे।

प्रश्नः—

१—भगवान चन्द्रप्रभ, पूर्व भव में कौन थे, और फिर किस गति में गये ?

२—भगवान चन्द्रप्रभ के माता पिता और जन्मस्थान का नाम क्या है ?

३—भगवान का नाम चन्द्रप्रभ क्यों रखा गया था ?

४—भगवान चन्द्रप्रभ का शरीर कीतना ऊँचा और कैसे वर्ण का था ?

५—भगवान ने कितनी अवस्था तक राज्य किया ?

६—भगवान का पारणा किसके यहां हुआ था ?

७—छद्मस्थअवस्था में भगवान कितने दिन विचरे ?

८—भगवान ने सब कितना आयुष्य भोगा और अजितनाथ स्वामी के निर्वाण को कितना काल बीतने पर निर्वाण पधारे ?
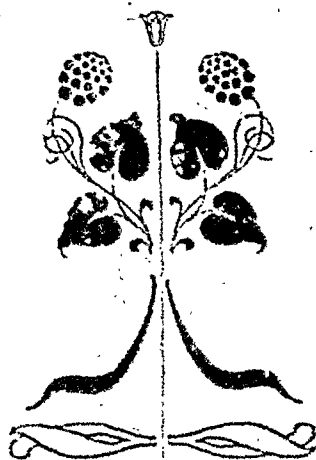
भगवान श्री सुविधिनाथ (पुष्पदंत)

पूर्व-भव
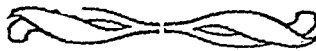
श्लोक—

निर्वाण मिन्दु यशसांव पुसा निरस्त
रामाङ्गजोरु जगतः सुविधे निधोहि ।
विस्तार यत् सपदिशं परमे पदेमां
रामाङ्गजोरु जगतः सुविधे निधेहि ।

धातकी खण्ड द्वीप के आगे कालोदधि समुद्र है। उसके आगे पुष्करवर द्वीप है। वहाँ, पूर्व महाविदेह की पुष्पकलावती विजय में, पुण्डरीकिणी नगरी थी। वहाँ का राजा महापद्म, श्रावक धर्म का पालन करने वाला था। समय पाकर उसने जगन्नन्दन मुनि से संयम स्वीकार कर लिया। प्रमाद रहित चारित्र का पालन करके, तीर्थंकर नाम कर्म के योग्य बिस बोलों में से कई एक बोलों की आराधना करके तीर्थ नाम कर्म उपार्जन किया समाधि पूर्वक शरीर त्याग, महापद्म, नववें आनत कल्प में १६ सागर की स्थिति का महर्द्धिक देव हुआ।

अंन्तिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध के मध्य खण्ड में, मरु देशान्तर्गत काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वहां, सुग्रीव नाम का राजा राज्य करता था। सुग्रीव की रानी का नाम, रामा था,जो सौन्दर्य की मूर्त्ति और पतिभक्ति की प्रतिमाथी।

(महापद्म का जीव, आनत कल्प का आयुष्य पूर्ण करके फाल्गुन कृष्णा ८ की रात को,) महारानी रामा के उदर में आया, महारानी रामा, उस समय शयन कर रही थीं। तीर्थङ्कर के गर्भ-सूचक चौदह महास्वप्न देखकर,वे जाग उठीं। पति से स्वप्न फल सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और गर्भ की रक्षा करने लगीं।

नव मास समाप्त होने पर, मार्गशीर्ष कृष्ण ५ की रात्रि को, महारानी रामा ने, मगर मत्स्य के चिन्ह से युक्त, श्वेत वर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही, क्षणभर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली।

आसन कम्प से, भगवान का जन्म हुआ जान छप्पन दिक्कुमारियाँ प्रसूतिगृह में आई। भगवान और माता को नमस्कार कर, वे, प्रसूतिगृह के कार्यों से निवृत हो, मंगल गाने लगी। उधर त्रैसठ इन्द्र एवं असंख्य देवीदेव, सुमेरु पर्वत पर एकत्रित हुए और सौधर्मपति शक्रेन्द्र महाराज भगवान के जन्मस्थान को आये। उन्होंने, माता रामा महारानी को अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित कर दिया तथा वे, पाँच रूप बनाकर, जयजयकार करते हुए भगवान को सुमेरु पर्वत पर लाये। इन्द्र और देवताओं ने, भगवान का जन्मोत्सव किया। पश्चात् भगवान को लाकर माता के पास लिटा दिया और माता की अवस्वापिनी निद्रा हरण करली।

महाराजा सुग्रीव ने भी प्रातःकाल पुत्र जन्मोत्सव मनाया। भगवान के सुविधिकुमार एवं पुष्पदन्त ये दो नाम रखे गये। अनेक दाइयों के संरक्षण में भगवान सुविधिकुमार, गिरि-कन्दरा की बेल के समान निर्बाध बढने लगे।

बालअवस्था बिताकर, भगवान ने युवावस्था मे प्रवेश किया। उनका सौ धनुष ऊँचा शरीर, क्षीर समुद्र के समान उज्ज्वल वर्ण का था। पिता सुग्रीव महाराजा एवं माता रामा महारानी ने,आग्रह पूर्वक भगवान के साथ अनेक राज्य कन्याएँ विवाह दीं। पुण्य कर्मों को खपाने के लिए, भगवान सुविधि कुमार, पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगे।

जब भगवान सुविधिकुमार की आयु पचास हजार पूर्व की हो गई तब सुग्रीव महाराज ने राज-पाट पाट उन्हें सौंप दिया। भगवान, पचास हजार पूर्व और अट्ठाइस पूर्वाङ्ग तक राज्य करते रहे और प्रजा को सुख देते रहे।

एक समय भगवान ने संसार त्याग की इच्छा की। उसी समय लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर, भगवान से धर्म एवं तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। भगवान सुविधिनाथ ने राजपाट त्याग कर, वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया। एक वर्ष तक भगवान, १ क्रोड़ आठ लाख सोनैये नित्यप्रति दान करते रहे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र और देवों ने भगवान का निष्क्रमणोत्सव किया। भगवान सूर्यप्रभा शिविका में विराज कर काकन्दी नगरी के मध्य होते हुए, उद्यान में पधारे। वहाँ छट्ट के तप में, मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को, भगवान ने,

एक हजार राजाओं के साथ संयम स्वीकार लिया। संयम स्वीकार करते ही, भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, काकन्दी के उद्यान से विहार कर गये। दूसरे दिन, श्वेतपुर नगर में,पुष्प राजा के यहाँ, प्रभु का पारणा हुआ। देवों ने पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

संग रहित एवं ममत्व रहित भगवान अनेक परिषह सहन करते हुए चार मास तक छद्मस्थ अवस्था में विचरे। वे विचरते हुए, काकन्दी के उसी उद्यान में पधारे। वहाँ भगवान ने, मालूर वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हो, क्षपक श्रेणी द्वारा, प्रथम मोह कर्म की प्रकृतियों को और पश्चात् ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंको नष्टकर भगवान सुविधिनाथ ने, कार्तिक शुक्ल ३ को जब चन्द्रमा का योग मूल नक्षत्र में प्राप्त हुआ परम विशुद्ध केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान को केवलज्ञान होते ही त्रिलोक में प्रकाश हुआ। देवों तथा इन्द्रों ने, केवलज्ञान महोत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। भगवान की अमोघ वाणी सुनकर, बारह प्रकार की परिषद् में से अनेक भव्यजीव बोध पाये, और बहुतों ने संयम तथा बहुतों ने श्रावक-व्रत एवं सम्यक्त्व स्वीकार किया। अट्ठाइस पूर्वाङ्ग और चार मास कम एक लक्ष पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने बहुत से जीवों का कल्याण किया।

भगवान सुविधिनाथ के वाराह आदि अठ्यासी गणधर थे। दो लाख मुनि थे। एक लाख बीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख उन्तीस हजार श्रावक थे। और चार लाख बहत्तर हजार श्राविकाएँ थीं।

अपना निर्वाण काल समीप जान कर भगवान एक सहस्र मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ अनशन करके, शैलेशी अवस्था धारण कर भाद्रपद सुदी ९ को, एक मास के अनशन से भगवान सुविधिनाथ, शाश्वत गति को प्राप्त हुए। इन्द्र तथा देवों ने शरीरसंस्कार क्रिया सम्पन्न की।

भगवान सुविधिनाथ पचास हजार पूर्व कुमार पद पर रहे पचास हजार पूर्व और अट्ठाइस पूर्वाङ्ग राज्य किया। चार मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु में केवली पर्याय पाली इस प्रकार भगवान सुविधिनाथ ने सब दो लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और भगवान चन्द्रप्रभु के निर्वाण को नब्बे कोटि सागरोपम बीत जाने पर, निर्वाण प्राप्त किया।

नवमें जिनेश्वर सुविधिनाथ के निर्वाण के कुछ काल पश्चात् हुंडक अवसर्पिणी काल के प्रभाव से, साधु तीर्थ का विच्छेद हो गया था। भोले और भव्य जीव, मार्ग भ्रष्ट मुसाफिरों की तरह हो गये। वे स्थविर श्रावकों से धर्म का मार्ग पूछने लगे और स्थविर श्रावक, अपनी मति एवं इच्छा के अनुसार धर्म

कहने लगे। धर्म का मार्ग पूछनेवाले श्रावक,ऐसे स्थविर श्रावकों को-धर्म बताने के वदले में-द्रव्य भेंट करने लगे। होते-होते, धर्म का मार्ग बतानेवाले श्रावक लोग,लोभी बन गये। उन्होंने, कई नये और कृत्रिम शास्त्रों की रचना द्वारा, दान का महाफल वता कर, कन्यादान: गौदान, पृथ्वीदान, धातुदान, अश्वदान, गजदान, स्वर्णदान, रजतदान आदि की प्रवृत्ति प्रचलित कर दी और 'इन दान के पात्र केवल हम ही हैं, दूसरे नहीं' यह उपदेश देकर, लोगों को ठगने लगे। इस प्रकार की प्रवृत्ति, भगवान शीतलनाथ ने तीर्थ प्रवर्ताया तव तक चलती रही। सोहलवें तीर्थङ्कर भगवान शान्तिनाथ के शाशनकाल तक भी, बीच-बीच में तीर्थ का विच्छेद होता रहा और इन मिथ्यात्वियों की जड़ जम गई;जो आज तक मौजूद है आज के ब्राह्मण, उन्हीं लोभी श्रावकों के वंशज हैं। जैन शास्त्र में श्रावक को माहण कहा है-और माहण ब्राह्मण को भी कहा है, अतः ब्राह्मण इन श्रावकों से ही प्रचलित हुए हों ऐसा सन्भव है।

प्रश्न:—

१—भगवान सुविधिनाथ, पूर्व भव में कौन थे? संक्षिप्त परिचय दो।

२—भगवान का जन्म किस देश के किस नगर में और किन के यहां हुआ था?

३—भगवान का शरीर कैसा था ?

४—भगवान ने किस दिन दीक्षा ली थी और कितने दिन
ि छद्मस्थ रहे ?

५—भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और उसमें कितने
तने काल तक कौन-कौन सा कार्य किया ?

६—वर्तमान ब्राह्मण किस की सन्तान हैं ? क्या पहले
रे ब्राह्मण भी थे ? यदि थे, तो उनकी सन्तान कहाँ गई और
ीं थे, तो 'ब्राह्मण' जातिवाचक शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ?

भगवान श्री शीतलनाथ

पूर्व-भव
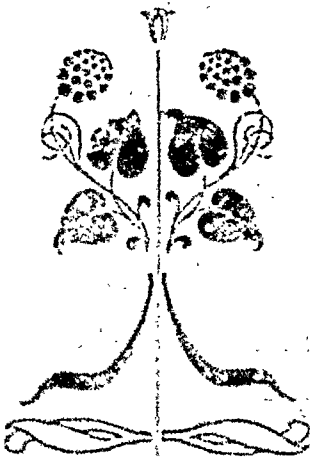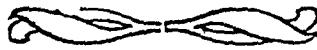
श्लोक—

पीडा गमोन परिजेतरिदत्त मर्त्या—
नन्दाऽतनुद्भव भया यशसां प्रसिद्धे ।
चित्ते विपर्ति निविशां भवंतित्वयीश
नन्दा तनुद्भव भया यशसां पसिद्धे ॥

इस मनुष्यलोक की सीमा पर पुष्करवर द्वीप है। बीच में मानुष्योत्तर नाम का एक कुण्डलाकार पर्वत आजाने से पुष्कर-वर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। बाहर के भाग में, केवल तिर्यञ्च ही रहते हैं। और भीतर के भाग में मनुष्य भी रहते हैं। यह अर्द्ध पुष्करवर द्वीप भी आठ लाख योजन के विष्कम्भ से घिरा हुआ है। दक्षिण और उत्तर दिशा में, कालोदधि समुद्र के किनारे से, मानुष्योत्तर पर्वत के किनारे तक पर्वत आ जाने से, अर्द्ध पुष्कर वर द्वीप के भी, पूर्व और पश्चिम ऐसे दो विभाग हो गये हैं।

अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के, पूर्व विभाग में महाविदेह क्षेत्र की वज्र विजय में, सुसीमा नामकी एक नगरी थी। वहाँ, पद्मोत्तर नामका प्रतापी और धर्म में श्रद्धा रखनेवाला राजा राज्य करता था। राज-काज करते हुए भी, उसका चित्त, विरक्त-सा रहता था। समय पाकर पद्मोत्तर ने, संसार को तृणवत् त्याग दिया और त्रिस्त्राघ मुनि से, संयम स्वीकार लिया। संयम का निरतिचार पालन और शास्त्रोक्त २० बोल में से कतिपय बोल की आराधना करके पद्मोत्तर ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। पश्चात् अनशन पूर्वक शरीर त्याग, प्राणत नाम के दसवें कल्प में, बीस सागरोपम की आयुवाला महर्द्धिक देव हुआ।

अंन्तिम भव ।

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, भद्दिलपुर नाम का एक रमणीय नगर था। वहाँ के पराक्रमी राजा का नाम दृढ़रथ था। दृढ़रथ की रानी का नाम नन्दा था, जो पति को सुख देनेवाली एवं स्त्रियोचित गुणों से युक्त थी।

प्राणत देवलोक की स्थिति भोगकर पद्मोत्तर का जीव, वैशाख कृष्ण ६ की रात को, पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र में-महारानी नन्दा की कुक्षिकन्दरा में आया। सोई हुई महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे, जिनका फल सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई और हर्ष सहित गर्भ का पालन करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, माघ कृष्ण १२ की रात को, महारानी नन्दा ने, वत्स तथा स्वस्तिका के चिन्ह एवं सर्व लक्षण वाले स्वर्ण वर्णी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र और देवताओं ने जन्मकल्याण मनाया। प्रातःकाल जन्मोत्सव मनाकर, महाराजा दृढरथ ने, बालक का नाम शीतलनाथ रखा। भगवान शीतलनाथ जब गर्भ में थे, तब रानी के कर स्पर्श मात्र से, राजा का तप्त अंग शीतल हो गया था, और राजा को अपार शान्ति अनुभव हुई थी। इसी बात को दृष्टि में रख कर, भगवान का नाम, शीतलनाथ रखा गया।

भाइयों के संरक्षण में,भगवान शीतलनाथ का पालन-पोषण होने लगा। समय पर भगवान, बाल-अवस्था को त्याग, युवा-वस्था में प्रविष्ट हुए। उनका ९० धनुष ऊँचा और सर्वाङ्ग-सुन्दर शरीर दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करता था। माता-पिता के अनुरोध से भगवान ने, अनेक राजकन्याओं का पाणि ग्रहण किया और पत्नियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे।

भगवान शीतलनाथ ने, पच्चीस सहस्र पूर्व की आयु में, पिता का सौंपा हुआ राज-भार स्वीकार किया। वे, पचास सहस्र पूर्व तक राज्य करते हुए, प्रजा को नीतिमय जीवन की शिक्षा देते रहे। पचहत्तर सहस्र पूर्व की अवस्था में भगवान ने, संसार व्यवहार त्यागने का विचार किया उसी समय,ब्रह्मलोक वासी लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि-प्रभो, संसार में तीर्थ का अभाव हो रहा है,अतः तीर्थ स्थापन कर, धर्म प्रवर्ताइये। भगवान शीतलनाथ ने,उसी क्षण राजपाट त्याग दिया, राज पाट त्यागकर वे वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र और देवताओं ने आकर भगवान का निष्क्रमणोत्सव किया। चन्द्रप्रभा शिबिका में विराजकर,भगवान भद्दिलपुर के उद्यान में पधारे। वहाँ, माघ कृष्ण १२ को-जब चन्द्र पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में था-भगवान ने छट्ठ के तप में एक सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकार

करते ही,भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ। भगवान,भद्दिलपुर से अन्यत्र विहार कर गये।

दूसरे दिन, रिष्टनगर में,पुनर्वसु राजा के यहां भगवान शीतलनाथ का पारणा हुआ। देवों ने, पंच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की। भगवान,तीन मास तक विविध अभिग्रह धारण करते हुए और शरीर में भी निस्पृह रहते हुए, छद्मस्थ अवस्था में विचरे। विचरते हुए, भगवान, भद्दिलपुर के उसी उद्यान में पधारे। वहाँ, पीपलवृक्ष के नीचे, प्रतिमाधारी कायोत्सर्ग में निश्चल खडे रहकर,भगवान ने,चारों घातिक-कर्म नष्ट कर दिये। घातिक कर्म नष्ट होते ही भगवान को केवल-ज्ञान हुआ। तत्काल इन्द्र और देवों ने, केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बार प्रकार की परिषद ने, भगवान की जग-तारिणी वाणी सुनी। भगवान की वाणी सुन, अनेक जीव बोध पाये।

भगवान शीतलनाथ के, आनन्दादि इक्यासी गणधर थे। एक लाख साधु थे। एक लाख दो सौ साध्वी थीं। दो लाख नव्यासी हजार श्रावक थे। और चार लाख अट्ठावन हजार श्राविका थीं। भगवान ने, तीन मास कम पच्चीस सहस्र पूर्व तक केवली पर्याय में विचर कर, अनेक भव्य प्राणियों का कल्याण किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, एक सहस्र मुनियों सहित भगवान शीतल नाथ, सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान ने अनशन कर लिया। अन्त में,शुक्ल ध्यान के तीसरे और चौथे पाये में पहुँच कर, भगवान ने, शेष कर्म क्षय कर डाले और वैशाख कृष्ण २ को, पूर्वाषाढा नक्षत्र में चन्द्र का योग आने पर, निर्वाण पद प्राप्त किया।

भगवान शीतलनाथ, २५ हजार पूर्व कुमारपद पर रहे। पचास हजार पूर्व, राजा रहे। तीन महीने छद्मस्थ अवस्था में रहे और शेष आयु में,केवली पर्याय का पालन किया। भगवान ने,सब एक लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और पुष्पदन्त स्वामी के निर्वाण को नव क्रोड़ सागर बीत जाने पर निर्वाण पद प्राप्त किया।

प्रश्नः—

१—भगवान शीतलनाथ, पूर्व भव में, कौन थे, कहाँ रहते थे और क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था ?

२—महारानी नन्दा के गर्भ में, भगवान का जीव कहाँ से तथा कितनी स्थिति पूर्ण करके आया था ?

३—भगवान का नाम शीतलनाथ क्यों रखा ?

४—भगवान की शारीरिक रचना क्या थी ?

५—भगवान ने, कितनी-कितनी आयु किस-किस कार्य में बिताई ?

६—भगवान का पारणा किस नगर में और किसके यहाँ हुआ था ?

७—भगवान के साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका कितनी थीं ?

८—अर्द्धपुष्करवर द्वीप किस कारण से कहा गया ?

९—इस द्वीप के भीतरी इस किनारे पर-व-उस किनारे पर क्या २ पर्वत समुद्र आदि हैं ?

११
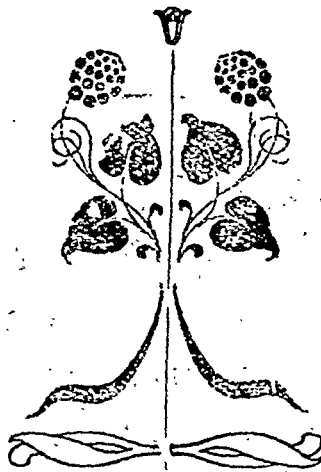
भगवान श्री श्रेयांशनाथ

पूर्व-भव

श्लोक—
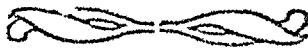
श्रेयांस सर्व विद्‌भक्तिगण्य क्रियामा ।

कान्ताननं त महिमानम मानयाते ॥

यं भेजुषो भवनियत्व गुणास यातं ।

कान्तानंत महिमान मऽमानयाते ॥

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह की कच्छ विजय में, क्षेमा नाम की एक उत्तम नगरी थी। वहाँ, नलिनिगुल्म नाम का राजा था। वह राजा, जैसा गुणवान था, वैसा ही पराक्रमी एवं प्रतापी भी था। राजकार्य करता हुआ भी, राजा नलिनि-गुल्म, धन-सम्पत्ति तो क्या, शरीर तक में भी आसक्ति नहीं रखता था। समय पाकर उसने वज्रदत्त मुनि के पास चारित्र स्वीकार कर लिया और तीव्र तप के साथ ही, अर्हद्भक्ति आदि बोलों की उत्कृष्ट आराधना करके, तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में, शुद्ध ध्यान द्वारा शरीर त्याग, अच्युत कल्प में, बाईस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव।

मध्य जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में, सिंहपुर नाम का नगर था। वहाँ, विष्णुसेन राजा राज्य करता था। विष्णुसेन की रानी का नाम विष्णुदेवी था, जो सौन्दर्य और गुणों की साक्षात् प्रतिमा थी।

अच्युत देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके नलिनिगुल्म का जीव, ज्येष्ठ कृष्णा ६ की रात को-जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र के साथ था, महारानी विष्णुदेवी के गर्भ में आया। तीर्थङ्कर के

गर्भ सूचक महास्वप्न देखकर, विष्णुदेवी जाग उठीं। पति से स्वप्नों का फल सुनकर, वे हर्षित हुईं और गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होनेपर, फाल्गुन कृष्ण १२ को, जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था महारानी विष्णुदेवी ने, गैंडा के लक्षणवाले स्वर्णवर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म कल्याण मनाने के लिए इन्द्र एवं देव उपस्थित हुए और जन्म कल्याण मनाकर अपने अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल महाराज विष्णुसेन ने, पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम श्रेयांशकुमार रखा। शैशवावस्था समाप्त करके भगवान, युवावस्था में प्राप्त हुए। उनका अस्सी धनुष ऊँचा शरीर बहुत ही सुन्दर था। माता-पिता के आग्रह को मानकर भगवान श्रेयांशकुमार ने, अनेक राजकन्याओं का पाणि ग्रहण किया और पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगे।

जब भगवान की आयु इक्कीस लाख वर्ष की हुई, तब महाराजा विष्णुसेन ने, राज-पाट श्रेयांशकुमार को सौंप दिया। भगवान, बयालीस लाख वर्ष तक राज्य करते रहे। एक दिन भगवान ने, धर्म तीर्थ प्रवर्तने का विचार किया, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने भी उपस्थित होकर धर्मतीर्थ प्रवर्तने की प्रार्थना की। स्वयं बुद्ध भगवान श्रेयांसनाथ राजपाट त्याग कर, वार्षिक दान देने लगे। वार्षिक दान पूर्ण होने पर, देव तथा इन्द्र

भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए आये। भगवान श्रेयांशनाथ, विमलप्रभा नाम की शिविका में विराज कर, जय ध्वनि के साथ सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ,फाल्गुन कृष्ण १३ को प्रातःकाल, भगवान ने, छट्ठ के तप में, पंचमुष्टि लोच करके, एक सहस्र राजाओं सहित प्रवर्ज्या स्वीकार की। उसी क्षण भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

भगवान सिंहपुर से विहार कर गये। दूसरे दिन, सिद्धार्थ नगर में नन्द राजा के यहां, भगवान ने छट्ठ तप का पारणा किया। देवों ने, पांच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

संयम का पालन करते हुए निर्ममत्व भाव से भगवान, दो मास पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में विचरे। पश्चात् भगवान,सिंहपुर के उसी सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ, अशोक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। क्षपक श्रेणी में पहुँच कर भगवान ने, शुक्ल ध्यान द्वारा घातिक कर्मों को-जिस प्रकार अग्नि, तृण को जला देती है, उसी प्रकार नष्ट कर दिये और माघ कृष्ण अमावस्या को, परमनिर्मल केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

आसन कम्पादि से,इन्द्र और देवोंने,भगवान को केवलज्ञान हुआ है, यह जाना। उन्होंने, उपस्थित होकर केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। भुवनपति,वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक, ये चार प्रकार के देव एवं चार ही

प्रकार की देवियाँ, तथा मानव मानवी और तिर्यंच तिर्यंचिनी ऐसी बारह प्रकार की परिषद ने भगवान की दिव्य वाणी श्रवण की। अनेक भव्य प्राणी, बोध पाये।

जिस समय श्रेयांशप्रभु,त्रिलोक की सम्पदा-(केवल ज्ञान) के स्वामी थे, उसी समय, नारायण में से प्रथम, त्रिपृष्ठ नाम के वासुदेव और अचल नाम के बलदेव हुए। ये दोनों महापुरुष, अर्द्ध भरत के स्वामी थे। अर्थात्, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में समुद्र तक और उत्तर में, वैताढ्य पर्वत तक इनकी अखण्ड आज्ञा वर्तती थी। वासुदेव और बलदेव की ऋद्धि, चक्रवर्ती की ऋद्धि से आधी होती है।

जनपद में विचरते और भव्य प्राणियों को तारते हुए, श्रेयांशस्वामी,पोतनपुर नाम के नगर, त्रिपृष्ठ वासुदेव की राजधानी में पधारे। वहाँ, उद्यान-रक्षक की आज्ञा लेकर भगवान उद्यान में विराजे। उद्यान-रक्षक ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव को,त्रिलोकीनाथ के पधारने की बधाई दी। भगवान का पधारना सुन, वासुदेव हर्षित हो उठे। सिंहासन से उठकर, उन्होंने वहीं से भगवान को वन्दना नमस्कार किया, और बधाई देने वाले उद्यान रक्षक को, साढे बारह क्रोड़ रुपये पुरस्कार में दिये।

त्रिपृष्ठ वासुदेव, अपनी ऋद्धि सम्बृद्धि सहित, भगवान को वन्दन करने के लिए आये। भगवान की दिव्य-वाणी श्रवण

करके, त्रिपृष्ठ वासुदेव, बहुत हर्षित हुए और भगवान से सम्यक्त्व ग्रहण किया। कई और प्राणियों ने भी मुनि धर्म एवं श्रावक धर्म स्वीकार किया।

यद्यपि त्रिपृष्ठ वासुदेव ने भगवान श्रेयांशनाथ से सम्यक्त्व स्वीकार किया था, लेकिन काम भोग में लिप्त होकर वे,सम्यक्त्व को भी भूल बैठे। परिणामतः सातवीं भूमि तमतमाप्रभा में उत्पन्न हुए। आगे चल कर ये ही महापुरुष, चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुए। त्रिपृष्ठ वासुदेव के भाई अचल बलदेव ने, भ्रातृ वियोग से वैराग्य पाकर संयम ले लिया था। संयम की आराधना द्वारा कर्म नष्ट करके ,वेसिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान श्रेयांश कुमार, इक्कीस लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे। इनके,गौस्थूभ आदि छहत्तर गणधर थे, चौरासी हजार साधु थे, एक लाख तीस हजार साध्वियाँ थीं और दो लाख उन्नीस हजार श्रावक एवं चार लाख अड़तातीस हजार श्राविकाएँ थीं।

अपना निर्वाण काल समीप जान कर,भगवान, एक हजार मुनियों के साथ सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ, अनशन करके भगवान ने,चार अघातिककर्म नष्ट कर दिये और श्रावण कृष्ण तृतिया को धनिष्ठा नक्षत्र में शाश्वत गति प्राप्त की।

भगवान श्रेयांशनाथ, इक्कीस लाख वर्ष,कुमार पद पर रहे।

बयाँलीस लाख वर्ष राज्य किया। दो मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान श्रेयांश कुमार ने, सब चौरासी लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान श्री शीतल नाथ के निर्वाण को-एक सौ सागर और छांसठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम-एक कोड़ सागर बीत जाने पर, निर्वाण पधारे।

प्रश्नः—

१-भगवान श्रेयांशनाथ, पूर्वभव कौनसीगति को कितने काल के लिए पधारे थे ?

२-भगवान का जन्मस्थल और उनके माता पिता का नाम क्या था ?

३-माता के गर्भ में, भगवान का जीव किस गति से और किस दिन आया।

४-भगवान का पारणा किसके यहां हुआ था ?

५ बारह प्रकार की परिषद् कौन-कौन सी है ?

६-भगवान के समकालीन वासुदेव और बलदेव का नाम क्या था ? उनका शासन कहाँ था ?

७-भगवान श्रेयांसकुमार के चारों तीर्थ की भिन्न भिन्न संख्या क्या थी ?

८—भगवान श्रेयांशकुमार ने कितनी-कितनी आयु किस २ कार्य में व्यतीत की ?

९—भगवान श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के निर्वाण में, और भगवान श्री श्रेयांशकुमार के निर्वाण में, कितने काल का अन्तर है ?

१०–भगवान श्रेयांशकुमार की जन्म तिथि और निर्वाण तिथि कौन सी है ?
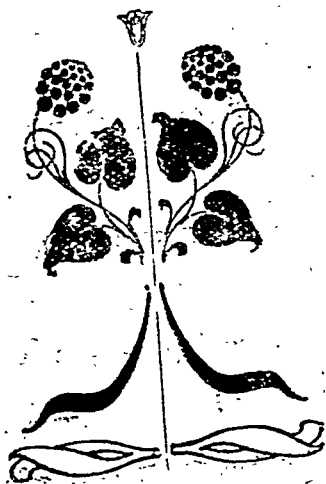
भगवान श्री वासुपूज्य ।

पूर्व-भव
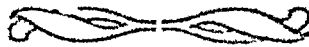
श्लोक—

एनां सितानि जगति भ्रमणार्जितानि
पर्जन्या द्दान वसुपूज्य सुतानवानि ।
त्वज्जागतानि जनयंति जनाजपंति
पर्जन्य द्दान वसुपूज्य सुताऽनवानि ॥

पुष्करवर द्वीपार्द्ध के महाविदेह क्षेत्र में, मंगलावती विजय के अन्तर्गत रत्न-संचया नाम की एक नगरी थी। वहाँ पद्मोत्तर नाम का अति पराक्रमी राजा राज्य करता था। पद्मोत्तर जिन-भक्त था। उसका हृदय, संसार से विरक्ति की ओर अधिक रहता था।

समय पाकर राजा पद्मोत्तर ने, वज्रनाथ मुनि से संयम स्वीकार लिया। संयम का पालन करते हुए पद्मोत्तर ने, अर्हद्भक्ति एवं तीर्थङ्कर नाम कर्म योग्य २० बोलों के सेवन द्वारा, तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन किया। बहुत काल तक निर्मल चरित्र का पालन करके, समाधि मरण द्वारा, प्राणतकल्प नामके दसवें देवलोक में, बीस सागर के आयुष्य वाला महार्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव।

इस मध्य जम्बूद्वीप के इसी भरत क्षेत्र में, अंग देश के अन्तर्गत चम्पा नामकी एक सुहावनी एवं सुन्दर नगरी थी। वहाँ, वसुपूज्य नाम का राजा था। वसुपूज्य के जया नाम की रानी थी, जो गुणरूप में, देव-कन्याओं की स्पर्द्धा करनेवाली एवं पति को सुख देनेवाली थी।

पद्मोत्तर राजा का जीव, प्राणत देवलोक का आयुष्य समाप्त

करके, ज्येष्ठ शुक्ला ६ की रात को–जब चन्द्र का योग शत-भिषा नक्षत्र के साथ था–जयादेवी के उदाराकार में आया। सुखनिद्रा में सोई हुई महारानी जयादेवी, तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं। पति को स्वप्न सुनाने पर, पति ने स्वप्न का जो फल बताया, वह सुनकर जयादेवी बहुत हर्षित हुईं। वे यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगी।

गर्भकाल समाप्त होने पर, फाल्गुन कृष्ण १४ की रात को वरुण नक्षत्र के योग में महारानी जयादेवी ने, महिष के चिन्ह से युक्त माणिक्य जैसे लालवर्ण वाले अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, त्रिलोक में क्षणिक उद्योत हुआ। छप्पन दिक कुमारियाँ* भगवान के जन्मभवन में आईं। उन्होंने, भगवान और माता को भक्तिपूर्वक वन्दन करके, नियमानुसार मंगलगान किया और वहाँ की भूमि को इन्द्र-महाराज के आने योग्य विशुद्ध बनाई। पश्चात् शक्रेन्द्र महाराज परिवार सहित आये। उन्होंने, पहले भगवान के जन्म-भवन की प्रदक्षिणा की और फिर माता एवं प्रभु को वन्दन कर, माता

---

*दिक्कुमारियाँ, भगवान [illegible] की [illegible] हैं, जो महर्द्धिक एवं स्वतन्त्र स्वामित्व भोगती है। ये, आठ पूर्व में, आठ पश्चिम में, आठ दक्षिण में, आठ उत्तर में, चार-चार चारों विदिशा में और आठ ऊर्ध्व लोक एवं आठ अधो-लोक में रहती हैं।

को अवस्वापिनी निद्रा दे, वे, भगवान को सुमेरु गिरि पर ले गये। वहाँ इन्द्र और देवों ने, विधिपूर्वक भगवान का जन्म-कल्याण मनाया; और फिर भगवान को उनकी माता के पास रखकर अपने-अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल राजा वसुपूज्य ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, बालक का नाम वासुपूज्यकुमार रखा। भगवान वासुपूज्य, वृद्धि पाने लगे। युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान का सत्तर धनुष ऊँचा, सर्वांग सम्पूर्ण लालवर्ण का शरीर, उदयाचल पर्वत पर निकले हुए सूर्य के समान शोभायमान लगता था। भगवान का रूप सौन्दर्य देखकर अनेक राजा लोग अपनी अपनी कन्या भगवान को देना चाहते थे, लेकिन भगवान के माता पिता भगवान से जब भी उनके विवाह की स्वीकृति चाहते, भगवान टालाटूली किया करते, स्वीकार न करते। एक दिन, भगवान वासुपूज्य के माता पिता, भगवान से आग्रहपूर्वक कहने लगे, कि—हे वत्स, वैसे तो आप जब से गर्भ में पधारे, तभी से हमारे यहां आनन्दोत्सव होते रहे हैं, लेकिन हमारे हृदय में आपका विवाहोत्सव देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा है। अतः आप हमें विवाहोत्सव देखने का सुअवसर भी प्रदान करें, जिसमें हम, आपके साथ अपनी कन्याओं का विवाह करने की इच्छा रखनेवाले राजाओं की प्रार्थना स्वीकार कर सकें। इसके सिवा, अब हम

वृद्ध भी हो चले हैं, सो वंश की परम्परा के अनुसार राजभार भी आप ही को उठाना होगा, इसलिए भी विवाह करना आवश्यक है। माता पिता की बात के उत्तर में, निर्विकार प्रभु मुस्कराकर कहने लगे—हे माता-पिता, आपके वचन पुत्र-प्रेम के उपयुक्त ही हैं, लेकिन मैं इस संसार रूपी अरण्य में, जन्म-मरण करते-करते थक गया हूं। ऐसा कोई देश, नगर, ग्राम, खदान, नदी, पर्वत और समुद्र बाकी नहीं है, जहाँ मैंने जन्म-मरण न किया हो। अब मैं, इस जन्म मरण के कारण रूप काम-भोग को काट डालना चाहता हूँ, इसलिए विवाह-बंधन में पड़ने और राज भार स्वीकार करने की मेरी इच्छा नहीं है। आपको मेरा महोत्सव ही देखना है न? आप अपनी यह अभिलाषा, मेरा दीक्षामहोत्सव, केवलज्ञान-महोत्सव और निर्वाण-महोत्सव देखकर पूरी कर सकते हैं। भगवान का उत्तर सुनकर, माता पिता के नेत्रों में आंसू भर आये। वे, नेत्रों में जल भरकर कहने लगे—हे पुत्र, आप गर्भ में आये, उस समय आपके जन्म-सूचक जो महास्वप्न देखने को मिले थे, उन पर से ही हमने यह तो समझ लिया था, कि आप जन्म-मरण का अन्त करने के लिए ही जन्म ले रहे हैं, लेकिन आप जन्म-मरण का अन्त तो तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करने के साथ ही कर चुके हैं। आपका दीक्षा और केवल महोत्सव तो होगा ही, लेकिन इन

महोत्सव के पहले, आप हमें विवाहोत्सव करने की स्वीकृति दें, जिसमें हम, यह उत्सव भी देख सकें। यह बात आप तीर्थङ्कर के लिये नई न होगी किन्तु ईक्ष्वाकुवंशोत्पन्न आदिनाथ भगवान जो प्रथम तीर्थङ्कर थे—ने भी विवाह किये थे, और सृष्टि-व्यवहार करने के साथ ही राज-भार भी उठाया था। पश्चात् समय पर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारे थे*। आदिनाथ भगवान के पश्चात् होने वाले भगवान अजितनाथ से श्रेयांशनाथ तक के तीर्थङ्करों ने भी, ऐसा ही किया था। इसलिए आप भी, उन्हीं की तरह पहले विवाह करिये, राज्य करिये और फिर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारिये। प्रत्युत्तर में भगवान, नम्रता भरे शब्दों में कहने लगे हे पिता, इन पूर्वमहानुभावों के चरित्र से मैं परिचित हूं, लेकिन उन्होंने विवाह और राज्य, भोग फल देने वाले, पूर्व संचित पुण्य कर्म खपाने के लिए किया था तीर्थङ्कर के लिए, विवाह एवं राज्य करना आवश्यक नहीं है। जिनके पुण्य के दलिये अधिक होते हैं, उन्हें उन पुण्य-दलियों को भोगने के लिए

---

* उक्त चरित्र से स्पष्ट है, कि माता पिता संतान का विवाह करने में जबरदस्ती से काम नहीं ले सकते, किन्तु संतान की इच्छा पर, विवाह के साधन जुटाया करते है। आज देश और समाज के दुर्भाग्य से, इसके विपरीत प्रवृत्ति हो रही है। यानी, संतान, विवाह की इच्छा करे, इसके पूर्व ही माता-पिता उसका विवाह कर देते हैं, तथा, सन्तान की इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती भी विवाह कर दिया जाता है।

विवाह तथा राज्य करना पड़ता है। क्योंकि जब तक शुभ एवं अशुभ कर्मों को—विपाक या प्रदेश से—भोग न लिया जावे, मुक्ति नहीं हो सकती। मेरे भोग फल देने वाले कर्म शेष नहीं हैं, इसलिए मुझसे आप विवाह या राज्य करने का अनुरोध न करिये, किन्तु मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करिये। भविष्य में, उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ और बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भी मेरी ही तरह, बिना विवाह किये दीक्षा लेंगे और पार्श्वनाथ महावीर आदि भी बिना राज्य किये ही दीक्षा लेंगे। कर्मों की भिन्नता के कारण, सब तीर्थंकरों का एक ही मार्ग नहीं हो सकता। इसलिए आप चिन्ता-रहित होकर मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दें।

माता पिता को समझा बुझाकर एवं शान्ति देकर, अठारह लाख वर्ष की अवस्था में भगवान वासुपूज्य, दीक्षा लेने लिए होकर तैयार हुए। उसी समय, लोकान्तिक देवों ने भी, उपस्थित धर्म तथा तीर्थ प्रवर्तने की, भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने, वार्षिक दान देना प्रारंभ कर दिया।

वार्षिक दान समाप्त होने पर, इन्द्र और देवताओं ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। भगवान, पृथ्वी नाम की शिविका में आरूढ़ हो, मनुष्य तथा देवताओं से घिरे हुए, वादित्र एवं जय ध्वनि के साथ, चम्पानगरी के विहारगृह बाग में पधारे। वहाँ, बेले के तप से, फाल्गुन कृष्ण अमावस्या को,

दिन के पिछले पहर में भगवान ने पंचमुष्टि लोंच करके, छः सौ राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। तुरन्त ही, भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, चम्पानगरी से विहार कर गये। दूसरे दिन, महापुर में, सुनन्द राजा के यहाँ भगवान का पारणा हुआ। देवों ने दान की महिमा की।

भगवान वासुपूज्य, अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, चम्पानगरी के उसी विहारगृह उद्यान में पधारे। वहाँ पाटलवृक्ष के नीचे भगवान ने कायोत्सर्ग किया। घातिक कर्म क्षय होने से, माघ शुक्ल २ * को भगवान को केवलज्ञान हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में क्षणिक प्रकाश हुआ। इन्द्र एवं देवों ने उपस्थित होकर, केवलज्ञान की महिमा की। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद् ने, भगवान का कल्याणकारी उपदेश सुना। अनेक भव्य प्राणी, भगवान के उपदेश से बोध पाकर, संयम में दीक्षित हुए।

भगवान के, सौधर्म आदि साठ गणधर थे। बहत्तर हजार साधु थे। एक लाख साध्वियाँ थीं। दो लाख पन्द्रह हजार श्रावक थे और चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

---

* यदि भगवान वासुपुज्य, एक मास छद्मस्थ रहें, तो केवलज्ञान की तिथि ठीक नहीं ठहरती। अतः यदि किन्हीं की कोई दूसरी धारणा हो, तो सुधार लें।

वासुपूज्य, एक मास कम चौपन लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते और अनेक जीवों का कल्याण करते रहे

केवलज्ञान होने के पश्चात्, भगवान चम्पापुरी से विहार करके, अनेक जनपद को पावन बनाते हुए, द्वारकापुरी पधारे। वहाँ भगवान, उद्यान में विराजे। बाग-रक्षक ने, द्विपृष्ट वासुदेव और विजय बलदेव को, भगवान के पधारने की बधाई दी। द्विपृष्ट, दूसरे वासुदेव और विजय, दूसरे बलदेव थे। इन्होंने, बधाई लानेवाले बाग-रक्षक को, साढ़े बारह क्रोड़ रुपये पुरस्कार में दिये और आप अपनी ऋद्धि सहित, भगवान वासुपूज्य को वन्दन करने गये। भक्ति-पूर्वक भगवानको वन्दन करके, भगवान की अमोघवाणी सुनी। भगवान की वाणी सुनकर, श्रोताओं में से अनेकों ने संयम और अनेकों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये। द्विपृष्ट वासुदेव ने भी, सम्यक्त्व स्वीकार किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान, छः सौ साधुओं सहित पुनः चम्पानगरी पधारे। चम्पानगरी में, भगवान वासुपूज्य ने अनशन करके सब कर्मों को क्षय कर डाला और आषाढ़ शुक्ला १४ को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान वासुपूज्य, अठारह लाख वर्ष तक घर में कुमार पद पर रहे। एक मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान वासुपूज्य ने सब बहत्तर

लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान श्रेयांशनाथ के निर्वाण को चव्वन सागर बीतने पर, मोक्ष पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान वासुपूज्य पूर्वभव में कौन थे? कौन-सी करणी की थी? और फिर किस गति में, कितने काल का आयुष्य लेकर पधारे थे?

२—भगवान के माता-पिता का नाम क्या था और वे किस द्वीप के, किस क्षेत्र के एवं किस देश के किस नगर में रहते थे?

३—भगवान वासुपूज्य ने, विवाह क्यों नहीं किया और राज्य भार क्यों नहीं स्वीकारा?

४—भगवान की आयु दीक्षा लेने के समय कितनी थी?

५—भगवान का पारणा कहां और किसके यहां हुआ था?

६—भगवान के समकालीन वासुदेव, बलदेव का नाम क्या था और व कहाँ रहते थे?

७—भगवान के तीर्थों की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी?

८—भगवान वासुपूज्य की जन्म तिथि, दीक्षा तिथि केवलज्ञान तिथि और निर्वाण तिथि बताओ।

९—भगवान का निर्वाण किस स्थान पर हुआ?

१०—भगवान वासुपूज्य के निर्वाण में और भगवान शीतलनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा था?